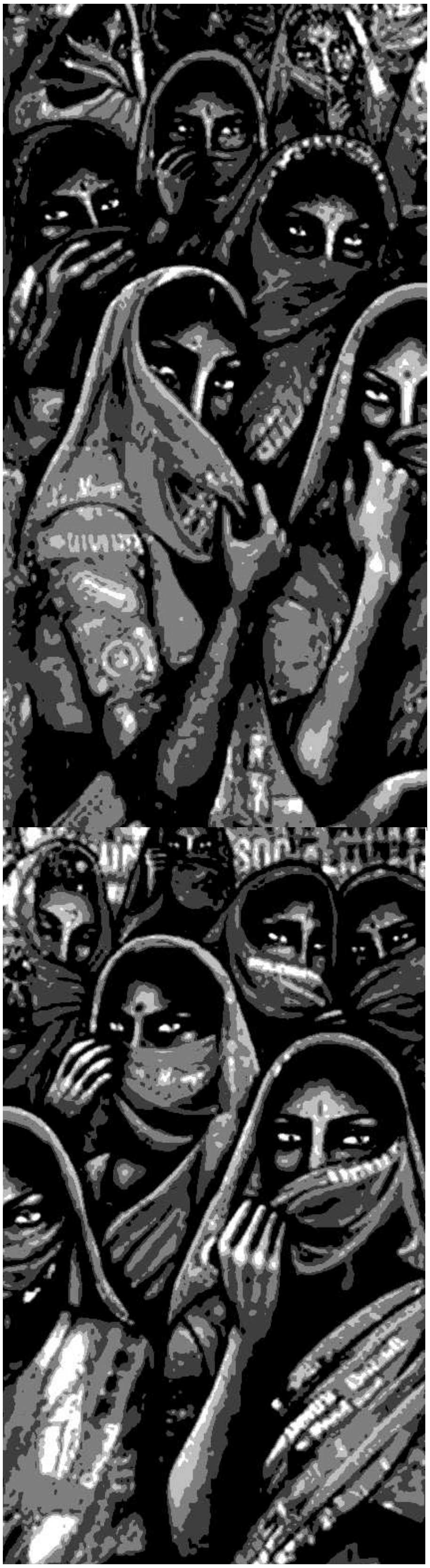


नवजागरण, स्त्री-प्रश्न और आचरण-पुस्तकें

गरिमा श्रीवास्तव

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध और बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के भारत का राजनीतिक परिदृश्य जटिल और परस्पर विरोधी तत्त्वों से मिल कर बना था। समकालीन रचनाकारों की वैचारिकता के निर्माण में भाषिक, साम्प्रदायिक विमर्श और पितृसत्ता की भूमिका थी। वे सुधारोन्मुख दीखने के साथ-साथ औपनिवेशिक प्रभुवर्ग के हित-विरोधी भी नहीं दिखना चाहते थे। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में जिस गद्य का निर्माण हो रहा था, वह उनके इस 'एजेंडे' की पूर्ति में सहायक बना। उपन्यास-लेखन के प्रारम्भिक दौर में हिंदी समेत कई भारतीय भाषाओं के लेखक अपने-अपने समुदाय के भीतर स्त्रियों की दशा में सुधार की चिंता करते दिखने लगे। ब्रिटिश उच्चाधिकारियों की संस्तुति-प्रशस्ति और पुरस्कारों ने ऐसे गद्य-लेखन को प्रश्रय दिया जो उपन्यास के कलेवर में आचरण-संहिताएँ थीं। इस संदर्भ में यह आलेख मुख्यत: तीन प्रस्ताव करता है :

1. उपन्यास लेखन के प्रारम्भिक दौर में लिखी रचनाओं को न तो पूरी तरह पश्चिम से प्रभावित माना जाना चाहिए, न ही भारतीय आख्यान परम्परा से पूरी तरह विच्छिन्न। इन पाठों को भारतीय सांस्कृतिक विधाओं के सम्मिलन और टकराहटों के प्रमाण के रूप में देखा जाना चाहिए। इनका विश्लेषण मनुष्य, विशेषकर स्त्री आचरण-संहिताओं की दृष्टि से किया जाना चाहिए।

'मुझको निश्चय है कि दोनों स्त्री-पुरुष इसको पढ़कर अति प्रसन्न होंगे और बहुत लाभ उठाएँगे... स्त्रियों का समय किस-किस काम में व्यतीत होता है। और क्यों कर होना उचित है। बेपढ़ी स्त्री जब एक काम को करती है, उसमें क्या-क्या हानि होती है। पढ़ी हुई जब उसी काम को करती है तो उससे क्या-क्या लाभ होता है। स्त्रियों की वह बातें जो आज तक नहीं लिखी गयीं मैंने खोज कर सब लिख दी हैं...'



2. इन आचरण-पुस्तकों के समानांतर स्त्रियों के गद्य-लेखन की अंतर्वस्तु का विश्लेषण ज़रूरी है ताकि यह पता चल सके कि अब तक विलुप्त और उपेक्षित 'स्त्री-गद्य' से संबंधित परम्परा की विस्मृत कड़ियाँ भारतीय भाषाओं के साहित्य को एक सूत्र में कैसे पिरोती हैं। साथ ही इसका अंदाज़ा भी लग सके कि तत्कालीन स्त्री-रचनाकार स्त्री, समाज, जेण्डर के विषय में क्या और कैसे सोचती थीं और वे गद्य में कैसे, आचरण-संहिताओं का प्रतिरोधी विमर्श प्रस्तुत करती हैं।

3. प्रारम्भिक उपन्यासों की अर्थच्छटाओं को समझने के लिए औपन्यासिक परिदृश्य को समग्रता में देखे जाने की ज़रूरत है। हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के गद्य में साहित्य-रूपों और कथ्य की भिन्नता के बावजूद एक ही जैसे कथानक का दोहराव यह बताता है कि राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में सांस्कृतिक मूल्यों और राजनीतिक उद्देश्य की भूमिका प्रमुख थी।

I

नवजागरण के दौर के लेखक भूमिका या प्रस्तावना में पुस्तक-लेखन का उद्देश्य स्पष्ट कर दिया करते थे। मसलन 1869 में डिप्टी नज़ीर अहमद ने अपने समुदाय की स्त्रियों को शिक्षित करने के लिए लिखे *मिरात-उल-उरूस* की भूमिका में उल्लेख किया था :

> हम्द-ओ नात के बाद वाज़ह हो कि हर चंद इस मुल्क में मस्तूरात के पढ़ाने-लिखाने का रिवाज़ नहीं, मगर फिर भी बड़े शहरों में ख़ास-ख़ास शरीफ़ ख़ानदानों की बाज़ औरतें क़ुरान मजीद का तर्जुमा, मजहबी मसायल और नसायह के उर्दू रिसाले पढ़-पढ़ा लिया करती हैं।... मैं देखता था कि हम मर्दों की देखा-देखी लड़कियों को भी इल्म की तरफ़ एक ख़ास रग़बत है। लेकिन इसके साथ ही मुझको यह भी मालूम होता था कि निरे मज़हबी ख़यालात बच्चों की हालत के मुनासिब नहीं! और जो मज़ामीन उनके पेशे-नज़र रहते हैं उनसे उनके दिल अफ़सुर्दा, उनकी तबीयतें मुन्क़बिज़ और उनके ज़हन कुंद होते हैं। तब मुझको ऐसी किताब की जुस्तजू हुई जो इख़लाक और नसायह से भरी हुई हो और उन मामलात में जो औरतों की ज़िंदगी में पेश आते हैं और औरतें अपने तोहमात और जहालत और कजराई की वज़ह से हमेशा इनमें मुब्तिला-रंज-ओ-मुसीबत रहा करती हैं, उनके ख़यालात की इस्लाह और उनकी आदात की तहज़ीब करे और कि दिलचस्प पैराये में हो जिससे उनका दिल न उकताए, तबीयत न घबराए। मगर तमाम किताब ख़ाना छान मारा ऐसी किताब का पता न मिला, पर न मिला। तब मैंने इस क़िस्से का मंसूबा बाँधा।[1]

---

[1] नज़ीर अहमद (1982), *मिरात-उल-उरूस*, टिप्पणियाँ तथा हिंदी लिप्यंतर मदनलाल जैन, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली, द्वितीय सं. : 9-10.

इस पुस्तक को अंग्रेज़ शिक्षाधिकारी द्वारा एक हज़ार रुपये का पुरस्कार भी मिला था— 'इत्तेफ़ाक़ से इसका मसौदा अंग्रेज़ डायरेक्टर तालीमात की नज़र से गुज़रा। वह इसे पढ़ कर फड़क उठा। उसी की तवज्जो से यह किताब छपी और इस पर मुसन्निफ़ को हुकूमत की तरफ़ से एक हज़ार रुपया इनाम मिला।'[2]

हिंदी के प्रथम उपन्यास *देवरानी-जेठानी की कहानी* (1870) की भूमिका में भी पुस्तक-लेखन का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए गौरीदत्त शर्मा ने लिखा था :

> स्त्रियों को पढ़ने-पढ़ाने के लिए जितनी पुस्तकें लिखी गयी हैं, सब अपने-अपने ढंग और रीति से अच्छी हैं, परंतु मैंने इस कहानी को नये रंग-ढंग से लिखा है। मुझको निश्चय है कि दोनों स्त्री-पुरुष इसको पढ़कर अति प्रसन्न होंगे और बहुत लाभ उठाएँगे... स्त्रियों का समय किस-किस काम में व्यतीत होता है। और क्यों कर होना उचित है। बेपढ़ी स्त्री जब एक काम को करती है, उसमें क्या-क्या हानि होती है। पढ़ी हुई जब उसी काम को करती है तो उससे क्या-क्या लाभ होता है। स्त्रियों की वह बातें जो आज तक नहीं लिखी गयीं मैंने खोज कर सब लिख दी हैं... प्रकट हो कि यह रोचक और मनोहर कहानी श्रीयुत एम. केमसन साहिब, डायरेक्टर ऑफ़ पब्लिक इंस्ट्रक्शंस बहादुर को ऐसी पसंद आयी, मन को भायी और चित्त को लुभाई कि शुद्ध करके इसके छपने की आज्ञा दी और दो सौ पुस्तक मोल लीं और श्रीमन् महाराजाधिराज पश्चिम देशाधिकारी श्रीयुत लेफ़्टिनेंट गवर्नर बहादुर के यहाँ से चिट्ठी नवम्बर 2672 लिखी हुई 24 जून, 1870 के अनुसार, इस पुस्तक के कर्ता पण्डित गौरीदत्त को 100 रुपये इनाम मिले।

यह वह समय था जब गद्य-साहित्य के ज़रिये एक नये ढंग का सामाजिक और राजनीतिक सुधार आगे बढ़ाया जा रहा था। विभिन्न भारतीय भाषाओं में पश्चिम के प्रभाव और देशज आख्यान परम्परा के प्रभाव का सम्मिलित रूप गद्य में दिखाई दे रहा था। 'उपन्यास' पद का प्रयोग अपने-अपने राजनीतिक-सामाजिक एजेण्डों की पूर्ति के लिए किया जा रहा था। हिंदी और कई भारतीय भाषाओं में अलग-अलग साहित्य-रूपों में गद्य लिखा जा रहा था। लेकिन सांस्कृतिक और प्रांतीय साहित्य-रूपों और कथ्य की भिन्नता के बावजूद हमें एक ही जैसे कथानक का दोहराव दिखाई देता है। इससे पता चलता है कि राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में सांस्कृतिक मूल्यों और राजनीतिक उद्देश्य की भूमिका महत्त्वपूर्ण थी। पुनर्जागरण के दौर में लिखे प्रारम्भिक गद्य को इस नये साहित्यिक जन के लिखित दस्तावेज़ के रूप में देखा जा सकता है।

उपन्यासकारों ने पश्चिमी शिक्षा तथा पारम्परिक संस्कृति और भारतीय धार्मिक-सामाजिक मूल्यों के तनाव और द्वंद्व की समस्या का सामना भी किया और ऐसी रचनाएँ औपनिवेशिक अनुभव के प्रतिरोध को दर्ज कराने और उनके वैचारिक अंतर्विरोधों का प्रमाण बन कर सामने आयीं। औपनिवेशिक सत्ता द्वारा दिये जाने वाले पुरस्कारों और प्रशस्तियों ने भी लेखकों को प्रेरणा दी। मुंशी कल्याण राय और मुंशी ईश्वरी प्रसाद के सह-लेखन में प्रकाशित *वामा शिक्षक* की भूमिका में कहा गया :

> इन दिनों मुसलमानों की लड़कियों के पढ़ने के लिए तो एक-दो पुस्तकें जैसे *मिरात-उल-उरूस* आदि बन गयी हैं, परंतु हिंदुओं व आर्यों की लड़कियों के लिए अब तक कोई ऐसी पुस्तक देखने में नहीं आयी, जिससे उनको जैसा चाहिए वैसा लाभ पहुँचे और पश्चिम देशाधिकारी श्रीमन्महाराजाधिराज लेफ़्टिनेंट गवर्नर बहादुर की यह इच्छा है कि कोई पुस्तक ऐसी बनाई जाए कि उससे हिंदुओं व आर्यों की लड़कियों को भी लाभ पहुँचे और उनकी शासना भी भली-भाँति हो। सो हम ईश्वरी प्रसाद मुदर्रिस रियाजी और कल्याण राय मुदर्रिस अव्वल उर्दू मदरसह दस्तूर तालीम मेरठ ने बड़े सोच-विचार और ज्ञान-ध्यान के पीछे दो वर्ष में इस पुस्तक को उसी ध्यान से बनाई। निश्चय है कि इस पुस्तक से हिंदुओं की लड़कियों को हिंदुओं की रीति-भाँति के अनुसार

---

[2] वही, *तआर्रुफ़* : 6.

> लाभ पहुँचे और सुशील हों और जितनी (बुरी) चालें और पाखण्ड जिनका आजकल मूर्खता के कारण प्रचार हो रहा है उनके जी से दूर हो जाएँगे और बुरी प्रवृत्तियों को छोड़कर अच्छी प्रवृत्तियाँ सीखेंगी और पढ़ने-लिखने और गुण सीखने की रुचि होगी।....'[3]

हिंदी के आरम्भिक दौर के सभी उपन्यासों के केंद्र में स्त्री-प्रश्न रहा है। *देवरानी-जेठानी की कहानी, भाग्यवती, वामा शिक्षक* और एक सीमा तक *परीक्षा गुरु* में स्त्रियाँ ऐसे चरित्र के रूप में सामने लाई गयीं जिनके माध्यम से तत्कालीन समाज-व्यवस्था में सुधार की सम्भावना दिखाई पड़ती थी। इसी क्रम में 'जेण्डर' को ध्यान में रख कर उपन्यास लिखे गये। बावजूद इसके कि 'जेण्डर' एक सामाजिक निर्मिति है जो किसी विशिष्ट व्यवहार का बारम्बार दोहराव होती है, इन उपन्यासों में जेण्डर को ले कर एक बँधी-बँधाई सोच दिखाई देती है— भाषा कोई भी हो, अच्छी स्त्री के बरअक्स बुरी स्त्री का विलोम खड़ा कर दिया जाता है। उदाहरण के तौर पर *मिरात-उल-उरूस, देवरानी-जेठानी की कहानी* और *वामा शिक्षक* जैसी पुस्तकें एक ही एजेण्डे के तहत रची गयीं। नज़ीर अहमद का उपन्यास दिल्ली के एक खाते-पीते मुसलमान परिवार की कथा कहता है, वहीं *देवरानी-जेठानी की कहानी* मेरठ के रूढ़िवादी बनिया परिवार की कहानी है— दोनों की समानताएँ आश्चर्यचकित कर देने वाली हैं। दोनों में दो बहनें हैं जिनका एक ही परिवार के दो भाइयों से विवाह हुआ है। बड़ी बहू स्त्री की 'स्टीरियोटाइप' अनपढ़ छवि का प्रतिनिधित्व करती है। वह अपने पति और श्वसुर की अवहेलना करती है, उनके सुझाव नहीं मानती और गहनों-कपड़ों की फ़रमाइश करती है जिसकी परिणति परिवार के विखण्डन में होती है। जबकि उसी की छोटी बहन योग्य, साक्षर, समझदार है, चतुराई से कम खर्च में घर-गृहस्थी चलाती है। दोनों जगह छोटी बहुएँ महान और सहनशील हैं। पतियों को सत्पथ पर लौटा ले आती हैं। ये सुधारकों की कल्पना की आदर्श स्त्रियाँ हैं जिनके चरित्र की चमक, अनपढ़, कुटिल और फूहड़ स्त्रियों के बरअक्स और अधिक चौंधियाती है। लेखक समाज के लिए अपेक्षित और काम्य स्त्री का प्रतीक रचते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि उन्हें यह तो मालूम था कि राष्ट्र और समाज को कैसी स्त्री चाहिए, लेकिन यह नहीं पता था कि स्त्री को क्या चाहिए। डिप्टी नज़ीर अहमद का मानना था कि यदि एक स्त्री अपने पति की सेवा ठीक से करे, अपनी संतान और परिवार की योग्य देखभाल करे तो वह अपने समुदाय और राष्ट्र की सेवा कर सकती है। साथ ही, यह भी कि अपनी दुर्दशा के लिए स्त्रियाँ स्वयं उत्तरदायी हैं— गुणों और सद्आचरण-द्वारा ही वे अपनी स्थिति में परिवर्तन और सुधार ला सकती हैं।

II

उन्नीसवीं सदी के इस दौर की राजनीति में 'स्त्री-प्रश्न' उभार पर था और राजनीति और जेण्डर दोनों परस्पर असम्बद्ध नहीं, बल्कि कई स्तरों पर सम्बद्ध दीखते हैं। पश्चिमी रहन-सहन के साथ औपनिवेशिक जीवन-शैली के संघर्ष और स्त्री-प्रश्न पर वैचारिक अंतराल ने रचनाकारों को टकराने-जूझने तथा इसे अपना राजनीतिक एजेण्डा बनाने का अवसर दिया। उदाहरण के लिए कन्नड़ के पहले कहे जाने वाले उपन्यास *इंदिराबाई* (1899) की चिंता के केंद्र में बाल-विवाह जैसी अहितकर सामाजिक प्रथाएँ हैं। गुलवाडी वेंकटराव उपन्यास में पाठकों को चरित्र-सुधार संबंधी उपदेश देते हुए लिखते हैं— 'पाठक इस पुस्तक को लिखने का उद्देश्य पूछ सकते हैं। सच्चाई और हृदय की पवित्रता

[3] गरिमा श्रीवास्तव (2009), *वामा शिक्षक,* भूमिका, सम्पादन एवं प्रस्तुति, नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली.



'तब मुझको ऐसी किताब की जुस्तजू हुई जो इख़लाक और नसायह से भरी हुई हो और उन मामलात में जो औरतों की ज़िंदगी में पेश आते हैं और औरतें अपने तोहमात और जहालत और कजराई की वज़ह से हमेशा इनमें मुब्तिला-रंज-ओ-मुसीबत रहा करती हैं, उनके ख़यालात की इस्लाह और उनकी आदात की तहज़ीब करे और कि दिलचस्प पैराये में हो जिससे उनका दिल न उकताए, तबीयत न घबराए। मगर तमाम किताब ख़ाना छान मारा ऐसी किताब का पता न मिला, पर न मिला। तब मैंने इस क़िस्से का मंसूबा बाँधा।'

ही इहलोक और परलोक में सार्थकता दे सकती है। यह पुस्तक इसी बात को प्रमाणित करने के लिए लिखी गयी है।'[4]

इसमें इंदिराबाई अंग्रेज़ी पढ़ी–लिखी युवती है जो अपनी माँ अंबाबाई द्वारा प्रस्तावित *राधाविलास* जैसी भक्ति–शृंगार की पुस्तकें पढ़ने से मना करने पर अंग्रेज़ी की आचरण–पुस्तकें पढ़ती है। गुलवाडी वेंकटराव इंदिराबाई के रूप में आदर्श भारतीय स्त्री का चरित्र रचते हैं जो विवाह और परिवार–संस्था में स्त्री की दोयम स्थिति पर कोई प्रश्न–चिह्न खड़ा नहीं करती बल्कि किताबें पढ़ कर एक आदर्श आधुनिक घरेलू स्त्री बनने की दिशा में अग्रसर होती है। स्त्री की यह छवि पूरी तरह पुरुष–दृष्टि से निर्मित है। इस छवि का निर्माण करने में आचरण–पुस्तकों की भूमिका बहुत बड़ी थी। भारत में नीति–उपदेश की आख्यान परम्परा तो चली आ ही रही थी, पश्चिम में भी, 'आचरण–साहित्य' का लेखन पुनर्जागरण काल में अपने पूरे उठान पर था। यह साहित्य नागरिकों को धार्मिक, नैतिक, सामाजिक व्यवहार के लिए दिशा–निर्देश देता था। उच्च एवं मध्यवर्ग में मुद्रण प्रौद्योगिकी ने ऐसी पुस्तकों को लोकप्रिय बनाया। सोलहवीं शताब्दी में यद्यपि कई पुस्तकों के छपने पर पाबंदी लगी, लेकिन ऐसी आचरण–पुस्तकें सुरक्षित रहीं जो स्त्रियों और पुरुषों दोनों के लिए लिखी गयीं। पुनर्जागरण के दौरान मानवतावादी विचारधारा ने व्यक्तिगत और सामाजिक आचार तथा शिक्षा के बीच संबंध क़ायम करने का प्रयास किया। सेंट क्लेयर ने कहा कि अच्छी शिक्षा व्यवहार सिखाती है तथा गम्भीर और उदात्त व्यक्तित्व के निर्माण में सहयोगी होती है।[5]

धीरे–धीरे 'कंडक्ट' या आचरण–साहित्य का केंद्रीय विषय स्त्रियाँ बनने लगीं। इनमें स्त्री के प्राथमिक कर्तव्यों, पतिव्रत–धर्म, धर्म–पालन की शिक्षा और परिवार, सगे–संबंधियों से व्यवहार के दिशा–निर्देश दिये जाने लगे। 1523 में जुआन लुईस वाइव्स ने *एजुकेशन ऑफ़ ए क्रिश्चियन वुमॅन* शीर्षक पुस्तक में जीवन के तीन महत्त्वपूर्ण पड़ावों— अविवाहिता, विवाहिता और विधवा के अनंतर स्त्री के व्यवहार के बारे में लिखा— 'इन तीनों पड़ावों में स्त्री को अपनी पवित्रता और शुचिता का ध्यान सबसे ज़्यादा रखना चाहिए, इसे पुस्तक में, मैंने अच्छी तरह समझा दिया है। पवित्र स्त्रियों को इस पुस्तक में अत्यंत विनम्र सुझाव दिये गये हैं।'[6]

---

[4] गुलवाडी वेंकटराव (1889), *इंदिराबाई*, पीठिके, मंगलूर, (इस अंश का अनुवाद गरिमा श्रीवास्तव द्वारा).

[5] सेंट क्लेयर (2000), *कंडक्ट लिटरेचर फ़ॉर वुमॅन 1500–1610,* खण्ड–1, पिकेरिंग ऐंड चैट्टो : सं. डब्ल्यू. मॉसेन 1, लंदन.

[6] जुआन लुइस वाइव्ज़ (2000), *द इंस्ट्रक्शन ऑफ़ अ क्रिश्चियन वुमॅन : ए सिक्स्टींथ सेंचुरी मैन्युअल 1524,* अनुवाद चार्ल्स फैंटेज़्ी, युनिवर्सिटी ऑफ़ शिकागो प्रेस, शिकागो.

ऐसी पुस्तकों का उद्देश्य स्त्री के शरीर और मस्तिष्क पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित करना था, जिनके प्रकाशन में, पुनर्जागरण-काल में आश्चर्यजनक वृद्धि दिखाई दी, इसलिए पुनर्जागरणकालीन युरोपीय स्त्री पर टिप्पणी करते हुए पीटर स्टैली ब्रास ने कहा— 'उसका शरीर बंदी है, उसका मुँह सिल दिया गया है और सिर्फ़ घर की चहारदीवारी के भीतर चलती फिरती है।'[7] सभी आचरण-पुस्तकों का सुर एक ही है— उनमें वर्ग के आधार पर स्त्रियों में कोई भेदभाव नहीं है। लेखकों का मानना है कि वर्ग और जाति से परे स्त्री की शासना अनिवार्य है।[8] कुछ पुस्तकें कथानक के आवरण में स्त्रियों को आचरण-सिखाने के लिए लिखी गयीं। मसलन 1740 में सैमुअल रिचर्डसन ने *पामेला,* 1788 में फ्रांसिस बर्नी ने *ऐवेनिला* और 1799 में मारिया एज़वर्थ ने *बेलिण्डा* शीर्षक उपन्यास लिखे। इसके अतिरिक्त पत्र और डायरी-विधा के तहत इंग्लैण्ड में मिस हैटफ़ील्ड रचित *लेटर्स-ऑन द इंर्पोटेंस ऑफ़ दी .फ़ीमेल सेक्स : विद ऑब्ज़र्वेशन ऑफ़ देयर मैनर्स* (लंदन, जे. एडलार्ड, 1803), *एन अन्फॉरचुनेट मदर्स एडवाइज़ टू हर एब्सेंट डॉटर्स* (सारा पेनिगंटन, लंदन, 1761), *द लेडीज़ न्यू इयर गिफ़्ट : ऑर एडवाइज़ टू अ डॉटर* (जॉर्ज सविले, मार्क्वेज़ ऑफ़ हैलिफ़ैक्स, 1688) जैसी पुस्तकें स्त्रियों को आचरण-सिखाने के लिए इंग्लैण्ड में लिखी गयी।

प्राचीन चीनी शिक्षा के अंतर्गत भी पितृसत्तात्मक क़बीलाई समाज को दृढ़ और शक्तिशाली बनाने के लिए हान वंश के शासन के दौरान स्त्री-आचरण-पुस्तकों की रचना की गयी। कन्फ़्यूशियस ने स्त्रियों के लिए तीन समर्पण और चार प्रकार के आदर्श निर्धारित किये थे ताकि उनका अनुकरण करके वे पतिव्रता और अच्छी माताएँ बन सकें। हान वंश (206-220) से लेकर मिंग वंश (1368-1644) के बीच हमें स्त्री-आचरण संबंधी चार पुस्तकों की शृंखला मिलती है। इनका सम्पादन और प्रकाशन *स्त्रियों के लिए चार पुस्तकें*[9] शीर्षक से बारम्बार हुआ। इनमें *स्त्री-प्रबोधिनी, स्त्री-सूक्ति संग्रह, गृह-शिक्षा* और *आदर्श स्त्री* शामिल हैं।

इन आचरण-पुस्तकों का वैशिष्ट्य है स्त्रियों द्वारा लिखा जाना। *स्त्री-प्रबोधिनी* में कुल सात अध्याय हैं— जिनके शीर्षक ही अंदर की बात का पता दे देते हैं। मसलन 'विनम्र आत्मसमर्पण, पति और पत्नी, स्त्री के कार्यकलाप, अधीनस्थता की स्वीकृति, सगे-संबंधी और श्रद्धापूर्ण समर्पण। इसे पूर्वी चीन की हान इतिहासकार और शिक्षाविद् बान झाओ ने अपनी बेटियों को सद्गृहस्थिन बनाने के लिए लिखा था। प्रारम्भिक दौर में लिखी इस पुस्तक की प्रसिद्धि का अंदाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि तत्कालीन विद्वान और शिक्षाविद् मा रोंग इसके प्रशंसक थे और उन्होंने अपने परिवार की स्त्रियों के पढ़ने के लिए इस पुस्तक का चुनाव किया था।[10]

स्त्री-सूक्ति संग्रह की रचना तांगवंश (618-907) की विदुषी साँग रूओक्ज़िन ने अपनी बेटियों को शिक्षा देने के लिए की। आगे चलकर इसमें बहुत-सी सूक्तियाँ जुड़ गयीं। आज जो सूक्ति-संग्रह उपलब्ध होता है, उसके बारह भाग हैं— आत्म की प्रतिष्ठा, पढ़ाई और कार्य, सुबह उठना, माता-पिता की सेवा, रिश्तेदारों की सेवा, पति-सेवा, बच्चों को प्रशिक्षित करना, गृह-प्रबंधन, मेहमानों की प्रतीक्षा, विनम्र समर्पण और मृतकों के प्रति सम्मान।

तीसरी पुस्तक 'गृह-शिक्षा' मिंग सम्राट चेंगज़ू (1403-1424) की पत्नी साम्राज्ञी क्ज़ू द्वारा राजवंश की स्त्रियों को आचरण-सिखाने के लिए लिखी गयी। बीस खण्डों की इस आचरण-संहिता

---

[7] पीटर स्टैली ब्रास और एनरोज़ालिडं जोंस (2000), *रिनेसाँ क्लोदिंग ऐंड द मैटेरियल्स ऑफ़ मेमॅरी,* केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज.

[8] रूथ केल्सो (1956), *डॉक्ट्रिन फॉर द लेडी ऑफ़ द रिनेसाँ,* युनिवर्सिटी ऑफ़ इलिनॉय प्रेस.

[9] झांग मिंगी (1987), *द .फ़ोर बुक्स .फ़ॉर वुमॅन,* अंग्रेज़ी अनुवाद, बी.सी. एशियन रिव्यू, खण्ड 1.

[10] वही.

पार्थ चटर्जी ने इस 'नयी स्त्री' को बदलती जीवन–पद्धति के अनुरूप कहा, क्योंकि बंगाली भद्रलोक की भूमिका सार्वजनिक जीवन में नगण्य हो जाने के कारण, ऊँचे पद और सत्ता उनके हाथ से चली गयी थी। ऐसे में घर के भीतरी 'स्पेस' पर आधिपत्य को बनाए रखने का प्रयास ही उसकी भरपाई कर सकता था।



में पूर्ववर्ती उपदेशों/शिक्षाओं में थोड़े–बहुत फ़ेरबदल के साथ सैद्धांतिक दृष्टि से स्त्रियों को पितृसत्ता का ग़ुलाम बनाने के लिए कड़े आचार–विचारों का प्रावधान किया गया।

कंफ़्यूशियस के उपदेशों को अमल में लाने के लिए मिंग वंश के सम्राट वांग ज़ियांग की माँ नीलू ने *आदर्श स्त्री* शीर्षक पुस्तक की रचना की जिसमें स्त्री को अपने ऊपर 'तीन नियंत्रण' और 'पाँच अटल–सत्य' सिखाने हेतु 'साम्राज्ञी की विशेषताएँ, ममता के प्रतिमान', पुत्रियोचित कर्तव्य, मृत्युपर्यंत सतीत्व जैसे ग्यारह अध्यायों का आयोजन है। पुस्तक में चीनी सामंती समाज के ऐतिहासिक मूल्यों, त्यागी, बलिदानी और पुरुष–दृष्टि में आदर्श एवं महान् स्त्रियों की कहानियाँ भी हैं।[11]

इन चारों पुस्तकों को मिंग सम्राट शेनज़ांग के कार्यकाल में बहुत प्रसिद्धि मिली। इनके मुफ़्त वितरण की व्यवस्था भी की गयी। यहाँ तक कि शेनज़ांग ने *गृह–शिक्षा* के अध्यायों को शिलालेखों पर उत्कीर्ण करवाने की आज्ञा दी थी ताकि सामान्य व्यक्ति को वह आचरण–संहिता उपलब्ध हो सके जिसमें कंफ़्यूशियस के उपदेशानुसार आज्ञाकारिणी, आदर्श स्त्रियाँ तैयार करने की प्रविधियाँ बताई गयी हों। इन पुस्तकों को पढ़ कर चीन के समृद्ध सामंतशाली अतीत को जाना जा सकता है और उसकी जगह आधुनिक विचारों को रख कर पढ़ने से आधुनिक चीन की आध्यात्मिक और भौतिक संस्कृति के निर्माण की प्रक्रिया के प्रामाणिक साक्ष्य मिल सकते हैं।

भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन–व्यवस्था ने एक नव्य–पितृसत्तात्मक व्यवस्था को जन्म दिया। इस व्यवस्था ने शिक्षा द्वारा नयी स्त्री–छवि का आदर्श सामने रखा। पार्थ चटर्जी [12] ने इस 'नयी स्त्री' को बदलती जीवन–पद्धति के अनुरूप कहा, क्योंकि बंगाली भद्रलोक की भूमिका सार्वजनिक जीवन में नगण्य हो जाने के कारण, ऊँचे पद और सत्ता उनके हाथ से चली गयी थी। ऐसे में घर के भीतरी 'स्पेस' पर आधिपत्य को बनाए रखने का प्रयास ही उसकी भरपाई कर सकता था। बंगाल में धीरेंद्रनाथ पाल, ताराकांत विश्वास, नागेंद्रबाला दासी, नवीन काली दासी, जयकृष्ण मित्र, सत्यचरण मित्र, गिरिजाप्रसन्न रायचौधरी जैसे लेखक आचरण–पुस्तकों के कारण विख्यात हुए। इसके अतिरिक्त *बामाबोधिनी* और *अंत:पुर* जैसी पत्रिकाएँ स्त्री–आचरण–उपदेश संबंधी लेख छापती थीं। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध से बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में स्त्री–शिक्षा को मद्देनज़र रखकर जो आचरण–पुस्तकें लिखी गयीं उन्हें तीन वर्गों में बाँटकर देखा जा सकता है— पहली वे, जो अतिरिक्त रूप से सचेतन 'बाबूवर्ग' के हितों के अनुरूप पितृसत्तात्मक व्यवस्था के पुराने ढाँचे में थोड़ी तब्दीली के साथ स्त्री की 'नयी छवि' गढ़ने का प्रयास कर रही थीं। इनमें धीरेंद्रनाथ पॉल की *रमणीर कर्तव्य, बंगाली बहू,* गिरिजाप्रसन्न रायचौधरी की *गृहलक्ष्मी,* तारकनाथ विश्वास की *बंगीय महिला,* जयकृष्ण मित्र की *रमणीर कर्तव्य* और भूदेव मुखोपाध्याय के

[11] झाँग मिंगी (1987), वही.

[12] पार्थ चटर्जी (1989), 'कॉलॅनाइज़ेशन, नैशनलिज़म ऐंड कॉलॅनाइज़्ड वुमॅन : द कंटेस्ट इन इण्डिया', *अमेरिकन एथनोलॅजिस्ट,* खण्ड 16, 4 नवम्बर 1989 : 4.

पारिवारिक प्रबंध को रखा जा सकता है। दूसरे वर्ग में वे आचरण-पुस्तकें आती हैं जो परम्परागत पितृसत्तात्मक ढाँचे को ही और अधिक बलशाली और सशक्त बनाने के लिए स्त्री-शिक्षा की वक़ालत कर रही थी। इनमें नागेंद्रबाला दासी की *नारी धर्म* और नवीनकाली दासी की *कुमारी शिक्षा* को देखा जा सकता है।

तीसरी श्रेणी में उन्हें रखा जा सकता है जो बतौर पाठ्य-पुस्तक लिखी गयीं जिनकी प्रेरणा के तौर पर सरकारी/ग़ैर-सरकारी प्रयासों की भूमिका रही— इनमें *स्त्रीधर्मसंग्रह,*[13] *सुताप्रबोध*[14] *वामाविनोद,*[15] *बहिश्ती जेवर,*[16] *हिंदी महिला पुस्तक,*[17] *स्त्री-शिक्षा : स्त्रियों के उपदेश के लिए,*[18] *पुत्री शिक्षोपकारी ग्रंथ,*[19] *स्त्रीधर्म सार,*[20] *मजलिस-उन-निस्सां,*[21] *रत्नमाला,*[22] *रीतिरत्नाकर,*[23] *कुमारीतत्व परीक्षा,*[24] *सुताशिक्षावली*[25] और *स्त्री-विचार*[26] को विशेष तौर पर देखा जाना चाहिए क्योंकि 'स्त्री-प्रश्न' पर हिंदू और मुसलमानों की हित-चिंता में अद्‌भुत समानता थी। वे स्त्री को शिक्षित भी करना चाहते थे, साथ ही अधीनस्थ भी बनाए रखना चाहते थे। पर्दे में भी रखना चाहते थे और आर्थिक स्वावलम्बन के उपदेश भी दे रहे थे। इस दौर की स्त्री को चाहे वह उत्तर भारत में हो या बंगाल या ओडीशा में, 'आदर्श स्त्री' की चुनौती का सामना करना था। इस मानसिक अनुकूलन का प्रारम्भ स्कूली और घरेलू शिक्षा से होना था, जिसकी प्रस्तावना 'आचरण-टेक्स्ट' करते थे। ये टेक्स्ट जिस स्त्री-छवि का आदर्श सामने रख रहे थे उसे 'अपने ही समाज के पुरुषों और पश्चिमी स्त्री से भिन्न होना था।'[27]

---

[13] पण्डित ताराचंद शास्त्री (1868), *स्त्रीधर्म संग्रह,* बरेली.

[14] रामप्रसाद तिवारी (1871), *सुताप्रबोध,* इलाहाबाद गवर्नमेंट प्रेस, इलाहाबाद (लेफ़्टिनेंट गवर्नर के आदेश से बालिका विद्यालयों के लिए प्रकाशित).

[15] गोकुल कायस्थ (1875), *वामाविनोद,* मनरंजन भादुड़ी यंत्रालय, बलरामपुर.

[16] हकीमुल उम्मत हज़रत मौलाना और अशरफ़ अली थानवी (2012), *बहिश्ती जेवर,* हिंदी (अनु.) इस्लामिक बुक सर्विस प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली.

[17] शंभूराम कालूराम शुक्ला (1876), *हिंदी महिला पुस्तक,* होल्कर सेंट्रल बुक डिपो, इंदौर, (सुपरिटेंडेंट स्टेट ऐजुकेशन, इंदौर के आदेश से प्रकाशित).

[18] रामकृष्ण (1871), *स्त्री-शिक्षा : स्त्रियों के उपदेश के लिए,* इलाहाबाद सरकारी छापाख़ाना, इलाहाबाद, (लेफ़्टिनेंट गवर्नर के आदेशानुसार).

[19] रामलाल (1872), *पुत्री शिक्षोपकारी ग्रंथ,* गवर्नमेंट प्रेस, इलाहाबाद.

[20] जीवराम कपूर खत्री (1892), *स्त्री धर्मसार,* गुर्ज़र यंत्रालय, आगरा.

[21] ख़्वाज़ा अल्ताफ़ हुसैन 'हाली' (1986), *मजलिस-उन-निस्सां या चुप की* दाद, अंग्रेज़ी अनु. गेल मिनॉल्ट, चाणक्य, नयी दिल्ली.

[22] *रत्नमाला* (1869), *स्त्रियों के पढ़ने के लिए किताब : एडवाइज़ ऑन डोमेस्टिक मैनेजमेंट ऐंड ट्रेनिंग फ़ॉर चिल्ड्रन,* इलाहाबाद मिशन प्रेस, क्रिश्चियन ऐजुकेशन वर्नाक्यूलर सोसाइटी, इलाहाबाद.

[23] पण्डित रामप्रसाद तिवारी (1872), *रीतिरत्नाकर,* (इलाहाबाद गवर्नमेंट प्रेस से लेफ़्टिनेंट गवर्नर के आदेशानुसार प्रकाशित).

[24] गंगाप्रसाद (1871), *कुमारीतत्वपरीक्षा,* अनाथ विद्यालय छापाख़ाना, मिर्ज़ापुर (काशी महाराज की आज्ञा से प्रकाशित).

[25] वंशीधर— *सुताशिक्षावली*— 1865, दूसरा संस्करण (1867), नुरुल इलम प्रेस (लेफ़्टिनेंट गवर्नर के आदेशानुसार प्रकाशित).

[26] हरिहर हीरालाल (1876), *स्त्रीविचार,* चश्मे-फ़ैज़ छापाख़ाना, मेरठ.

[27] पार्थ चटर्जी (1989), 'कॉलॅनाइज़ेशन, नैशनलिज़म ऐंड कॉलॅनाइज़्ड वुमॅन : द कॅंटेस्ट इन इण्डिया', *अमेरिकन एथनोलॉजिस्ट,* खण्ड 16, अंक 4 : 7. पार्थ का कथन है, 'द न्यू वुमॅन डिफ़ाइंड इन दिस वे वॉज़ सब्जेक्टेड टू अ न्यू पैट्रियार्की। इन फ़ैक्ट द सोशल ऑर्डर कनेक्टिंग द होम ऐंड द वर्ल्ड इन विच नैशनलिस्ट प्लेस्ड द न्यू वुमॅन वॉज़ कांट्रास्टेड नॉट ओनली विद दैट ऑफ़ मॉडर्न वेस्टर्न सोसायटी, इट वॉज़ एक्सप्लिसिटली डिस्टिंगुइश फ्रॉम द पैट्रियार्की ऑफ़ इण्डिजिनस ट्रेडिशन, द सेम ट्रेडिशन दैट हैज़ बीन पुट ऑन द डॉक बाय कोलोनियल इंटेरोगेर्स'.

हाली की *मजलिस-उन-निस्साँ*, जो पंजाब और संयुक्त प्रांत के पाठ्यक्रम में लगाई गयी, में पुत्री की प्रशंसा में कहा गया कि 'वह आटा गूंदती, रोटी पकाती, मसाले पीसती, आग जलाती, सूत कातती, अपने भाई-बहनों की देख-भाल करती, माता-पिता की सेवा करती।' *मजलिस* को चार सौ रुपये का सरकारी पुरस्कार मिला था...।



III

हिंदी पट्टी में *मिरात-उल-उरूस, देवरानी-जेठानी की कहानी, वामा शिक्षक, भाग्यवती* जैसी आचरण-पुस्तकें उपन्यास के कलेवर में लिखी गयीं थीं, लेकिन सरकारी सहायता एवं निजी/संस्थागत प्रयासों से ऐसी पाठ्यपुस्तकें भी तैयार हुईं जो लड़कियों और औरतों को धर्म और सांसारिक कर्तव्यों की शिक्षा देने, उनका आचरण-सुधारने के लिए काम आयीं। 1857 के विद्रोह के बाद हिंदू और मुसलमानों की बिगड़ती आर्थिक स्थिति और इसमें सुधार की आकांक्षा के प्रयास इन पुस्तकों में दिखाई देते हैं जहाँ औरतों को ऐसी शिक्षा दिये जाने की वक़ालत की जा रही थी जो मुसीबत के समय उनके परिवार के काम आ सके। मसलन, रामलाल ने *वनिताबुद्धिप्रकाशिनी*[28] में आभिजात्य घरों की स्त्रियों को भी सिलाई, कढ़ाई, बुनाई का हुनर सीखने की सलाह दी ताकि वे दुर्दिनों का सामना भी कर सकें। *सुताशिक्षावली*[29] में सीना-पिरोना, कढ़ाई-बुनाई जैसे हुनर सीखने पर वंशीधर ने बल दिया ताकि विधवा होने पर भी वे आत्मनिर्भर रह सकें (पृ. 87)। गोकुल कायस्थ ने *वामाविनोद* में अच्छी और पतिव्रता स्त्री उसे कहा जो पति की सम्पदा को बढ़ाने में सहयोगी हो, कम से कम ख़र्च में घर को चलाए और कभी कोई ग़िला-शिकवा न करें। *बहिश्ती जेवर* में मौलाना अशरफ़ अली थानवी ने स्त्रियों के लिए पश्चिमी ढंग की शिक्षा का विरोध करते हुए लिखा कि हिंदुस्तान के अज्ञानी लोग ही हाथ के काम को नीचा समझते हैं। वे मुहम्मद साहब का हवाला देते हुए लिखते हैं कि मुहम्मद साहब ने ख़ुद खेती की, अनाज पीसा, रोटियाँ बनाईं। वे ऐसे हल्के और आसान कामों की फ़ेहरिस्त गिनाते हैं जिनसे स्त्रियाँ सहज जीवनयापन कर सकें, जिनमें सीना-पिरोना, साबुन-स्याही मंजन, दवाएँ बनाना, चित्रकारी, कपड़ा बुनना और लड़कियों को पढ़ाना शामिल है।

इसी तरह हाली की *मजलिस-उन-निस्साँ*,[30] जो पंजाब और संयुक्त प्रांत के पाठ्यक्रम में लगाई गयी, में पुत्री की प्रशंसा में कहा गया कि 'वह आटा गूंदती, रोटी पकाती, मसाले पीसती, आग जलाती, सूत कातती, अपने भाई-बहनों की देख-भाल करती, माता-पिता की सेवा करती।' *मजलिस* को चार सौ रुपये का सरकारी पुरस्कार मिला था क्योंकि इसमें घर के कामकाज के साथ लड़कियों की शिक्षा की वक़ालत की गयी थी। स्त्री-शिक्षा के मुद्दे पर मुसलमान विचारकों का वैचारिक अंतर्विरोध इस पुस्तक में पढ़ा जा सकता है। जहाँ हाली लिखते हैं कि 'घर में काम-धाम करने वाली बेटी के प्रति

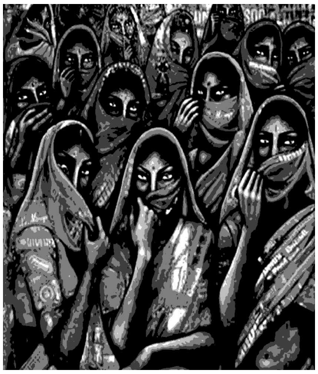
---

[28] रामलाल (1871), *वनिताबुद्धिप्रकाशिनी,* इलाहाबाद गवर्नमेंट प्रेस (डायरेक्टर ऑफ़ पब्लिक इंस्ट्रक्शंस के आदेश से प्रकाशित).

[29] वंशीधर (1865), *सुताशिक्षावली,* दूसरा सं. (1867), नुरुल इलम प्रेस (लेफ़्टिनेंट गवर्नर के आदेशानुसार प्रकाशित).

[30] ख्वाज़ा अल्ताफ़ हुसैन हाली, वही.

शिक्षा को अनपढ़ लड़कियों के अपेक्षित गुण के रूप में पहचाना जाना और *स्त्री-धर्म संग्रह* जैसी पुस्तक में विवाह का साधन समझना भी इस आचरण-पुस्तक का वैशिष्ट्य था। इनमें कहीं भी स्त्रियों के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की बात नहीं की गयी, वरन् उनके शिक्षित बनने और हुनर सीखने से होने वाले लाभ ही साध्यरूप में अभिव्यक्त हुए।



माँ-बाप अपना कोई दायित्व नहीं समझते। उन्होंने इसे खाना-पकाना सिखाया ताकि नौकरानी न रखनी पड़े, सीना-पिरोना सिखाया ताकि दर्जी का ख़र्च बचे और सोचा कि पढ़ाना-लिखाना बेकार है। लड़की यदि पढ़ेगी तो घर के काम कौन करेगा।'[31] यहाँ लेखक ने स्त्री-शिक्षा की वक़ालत की है लेकिन साथ ही यह भी कहा है कि आठ वर्ष की उम्र में ही लड़कियों को खाना पकाने और रसोई सँभालने का पूरा काम सीख लेना चाहिए।

शिक्षा को अनपढ़ लड़कियों के अपेक्षित गुण के रूप में पहचाना जाना और *स्त्री-धर्म संग्रह*[32] जैसी पुस्तक में विवाह का साधन समझना भी इस आचरण-पुस्तक का वैशिष्ट्य था। इनमें कहीं भी स्त्रियों के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की बात नहीं की गयी, वरन् उनके शिक्षित बनने और हुनर सीखने से होने वाले लाभ ही साध्यरूप में अभिव्यक्त हुए। हाली ने *मजलिस* में बताया कि स्त्री को सिर्फ़ पति की कमाई पर निर्भर नहीं रहना चाहिए, क्योंकि सीखा हुआ हुनर आड़े वक़्त ज़रूर काम आता है। अपने मंतव्य के समर्थन में हाली ने लिखा कि महारानी विक्टोरिया को भी तस्वीरें बनाने का काम आता है।[33] (पृ. 68) *स्त्री-उपदेश : दो लड़कियों की कहानी* (1873) में मुंशी अहमद हुसैन ने दुर्दिन में परिवार का पालन-पोषण करने में समर्थ होने के लिए लड़कियों की शिक्षा की वक़ालत की। आचरण-संहिताओं के लेखक बड़े ही तरतीबवार ढंग से पौराणिक, देशी-विदेशी क़िस्सों-उदाहरणों से अपना मंतव्य पुष्ट करते दिखाई देते हैं। मसलन फ़ारसी मदरसे के हेड क्लर्क पण्डित गोकुलचंद के निर्देशानुसार अहमद हुसैन ने आदर्श स्त्री-छवि को *स्त्री उपदेश* में दो सहेलियों देवा और सुखवंती के वार्तालाप के माध्यम से सामने रखा।[34]

'आदर्श स्त्री-छवि' के मामले में हिंदू और मुसलमान लेखकों में आश्चर्यजनक वैचारिक समानता देखना दिलचस्प है। हिंदू और मुसलमान दोनों का यह मानना था कि स्त्रियों की स्थिति में पतन का कारण अशिक्षा है। *स्त्री उपदेश* में देवा स्कूल जाती है और सुखवंती को जाने का उपदेश देती है। देवा का कहना है हिंदू देवियों गौरी, पार्वती और *रामचरितमानस* के सीता और मंदोदरी सरीखे चरित्रों, राजा भोज की पत्नी और लीलावती के आदर्श की कहानियाँ बताते हुए समरकंद की आयशा (जो कवयित्री थी और कई स्त्रियों को उसने पढ़ना-लिखना सिखाया) और किरमान मुल्क की राजकुमारी लाला ख़ातून तक पहुँचती है और तर्क-सिद्ध करती है कि शिक्षा के मामले में भारत की औरतों को अंग्रेज़ औरतों के पदचिह्नों पर चलना चाहिए जो 'पति' की अनुपस्थिति में भी तमाम

[31] वही.

[32] पण्डित ताराचंद शास्त्री, वही.

[33] ख़्वाज़ा अल्ताफ़ हुसैन हाली, वही.

[34] अहमद हुसैन (1873), *स्त्री उपदेश : दो लड़कियों की कहानी,* आगरा प्रेस, आगरा.

काम कर पाने में सक्षम हैं। पुस्तक में दो बातें विशिष्ट हैं— एक तो विधवा-विवाह का समर्थन और हिंदू और मुसलमान— दोनों सम्प्रदायों की औरतों के प्रति समान नज़रिया। लेखक हिंदू और मुसलमान स्त्रियों को सुबह उठकर पूजा-नमाज़ करने का उपदेश देने के साथ घर की सार-सँभाल, नम्र व्यवहार, स्वच्छता, मेहमानों की आवभगत, क्रोध और आवेश के दुष्परिणाम, सद्व्यवहार के लाभ, स्त्रियोचित गुणों— कोमलता, लज्जा आदि का बखान करता है। आचरण-लेखक की दृष्टि में लड़कियों को खेलने-कूदने में समय नहीं नष्ट करना चाहिए। देवा सुखवंती को बताती है कि 'औरत को कभी ज़िद्दी और अड़ियल नहीं रहना चाहिए, ऐसियों को कोई पसंद नहीं करता। लड़कियों को दिन में सो कर समय नहीं नष्ट करना चाहिए। इससे आलस्य आता है और आगे चलकर ससुराल के लोगों की बातें सुननी पड़ती हैं। भोजन करते समय बोलना नहीं चाहिए। कम बोलना, मेहमानों को पहले भोजन परोसना, हँसने की जगह मुस्कुराना अच्छी स्त्रियों के लक्षण हैं'[35] (पृ. 64-68)। डिप्टी नज़ीर अहमद ने भी *मिरात-उल-उरूस* में कम ख़र्च में घर चलाने वाली, संतोषी, और हर हाल में पति को प्रसन्न रखने वाली स्त्री को आदर्श माना जबकि अपनी इच्छाओं को अभिव्यक्त करने वाली, पति से बहस लड़ाने, पति के धन को व्यर्थ उड़ाने, धोखेबाज़ और पति की मुश्किलों में उसका साथ न देने वाली को 'बुरी स्त्री' के खाते में डाल दिया। मुंशी अहमद हुसैन ने अन्य आचरण—लेखकों की तर्ज़ पर शिक्षा को सम्पत्ति माना और कई ऐसे प्रसंगों का ज़िक्र किया है, जहाँ हिंदू और मुसलमान औरतें शिक्षा के अभाव में धन-सम्पत्ति से हाथ धो बैठती हैं, या विधवा होने पर धनहीन रह जाती हैं।

स्त्री-धर्म सार[35] (1892) में जीवराम कपूर खत्री ने भारत के उत्तरोतर पतन के मूल कारण के तौर पर लिखा कि 'यहाँ की नारी घरेलू कार्यों और बच्चों की देखभाल पर ध्यान नहीं दे रही है, इसलिए भारत पतन के क़गार पर है' (पृ. 34)। *भार्याहित* में घर के काम-धाम को स्त्रियों के स्वास्थ्य से जोड़ा गया। घरेलू कामकाज में मन-तन लगाने वाली स्त्री को आदर्श कहा गया और साथ ही इसे स्त्री के सुख-स्वास्थ्य की 'गारंटी' भी माना गया। अन्य आचरण-पुस्तकों में स्त्रियों को प्रदत्त उपदेशों से आगे जाकर *भार्याहित*,[36] जो हेनरी शेवास पाई की अंग्रेज़ी पुस्तक *एडवाइज़ टू अ वाइफ़* का हिंदी अनुवाद थी, में रघुनाथ दास ने स्त्रियों को बीमारी से बचने के कई तरीक़े सुझाए मसलन जो स्त्री मुँह अँधेरे उठ जाती है, वह नौकरों की आदर्श मालकिन होती है, आलसी स्त्री के नौकर भी आलसी होते हैं। *भार्याहित* में स्त्रियों के लिए ऐसे व्यायाम बताए गये, जिससे घर का कामकाज ठीक-ठाक चलता रहे मसलन पर्दे में रहने वाली औरतों को नसीहत दी गयी कि वे दिन में बीस-बार सीढ़ियों पर चढ़ें-उतरें। घरेलू कामकाज, बूढ़े-बच्चों की देखभाल, कपड़े धोना, झाड़ू-पोंछा लगाना, नौकरों के ऊपर चौबीसों घंटे नज़र रखने को स्वास्थ्यकर गतिविधियाँ बताया गया। कामकाज करते रहने से अपच, अनिद्रा, कमज़ोरी जैसे रोग नहीं होते। ये सलाहें ज़्यादातर मध्यवर्गीय वणिक परिवारों की औरतों को दी गयी थीं, जो नयी अर्थव्यवस्था में अनाज, मसाला इत्यादि के कूटने-पीसने का काम छोड़ रही थीं। इसलिए *भार्याहित* में कहा गया कि ग़रीब स्त्रियाँ ख़ूब श्रम करती हैं, इसलिए उनके बच्चे निरोग रहते हैं जबकि अमीर स्त्रियाँ आलसी होती हैं और बीमार बच्चे पैदा करती हैं— 'कंगालों के निरोग छोटे-मोटे, गुलाब के फूल जैसे हँसमुख बालकों के सामने धनवानों के रोगी, सूखे-पीले डरावने बच्चों को देखो जो बहुधा वैद्यों के ही अधीन रहते हैं'[37] (पृ. 245)।

इस तरह के आचरण-टेक्स्ट लड़कियों के पाठ्यक्रम में लगाए जा रहे थे। इन रचनाओं से लेखकों

---

[35] जीवराम कपूर खत्री, वही.

[36] हेनरी शवासे पाई द्वारा अंग्रेज़ी में लिखित *एडवाइज़ टू अ वाइफ़* हिंदी अनु., : *भार्याहित* (1883). दीवान बहादुर चौबे रघुनाथ दास द्वारा, बारहवाँ संस्करण, राजपूताना, नॉर्थ प्राविंस, 1929.

[37] वही : 245.

का 'परोपकारिता' का बोध साफ़ तौर पर उजागर होता था। वे वर्ग-चरित्र की अवधारणा को और अधिक मज़बूत करने तथा प्रकारांतर से पितृसत्तात्मक मूल्यों का नये समय में पुनर्स्थापन का प्रयास भी कर रहे थे। डिप्टी नज़ीर अहमद जैसे सरकारी मुलाज़िम एक विशिष्ट समुदाय की समस्याओं के बारे में जो चित्रण कर रहे थे और उनकी देखा-देखी *वामाशिक्षक* जैसी पुस्तकें औपनिवेशिक प्रशासन की विभाजनकारी नीतियों का परिणाम थीं, लेकिन इनमें चित्रित 'सुधार' की हुई जिस स्त्री-छवि का प्रस्तुतीकरण हुआ वह एक विशिष्ट पितृसत्तात्मक दृष्टि का परिणाम थी जो हिंदू और मुसलमानों में ही नहीं 'नेटिव' ईसाइयों में भी एक जैसी थी। इसके उदाहरण के तौर पर *डोमेस्टिक मैनर्स ऐंड कस्टम्स ऑफ़ द हिंदूज़*[38] (1860) को देखा जा सकता है जिसके लेखक बाबू ईशुरी दास फ़तेहगढ़ के धर्मांतरित देशी ईसाई थे। पुस्तक में बताया गया कि 'घरेलू काम, बच्चों की देखभाल यीसू की सेवा जितना ही महत्त्वपूर्ण है। पति के अधीनस्थ रहकर ही स्त्री ईश्वर की प्रिय बन सकती है' (पृ. 173-74)। *रत्नमाला*[39] (1869), जो *रीडिंग बुक फ़ॉर वुमॅन : एडवाइज़ ऑन डोमेस्टिक मैनेजमेंट ऐंड ट्रेनिंग फ़ॉर चिल्ड्रेन* का अनुवाद थी, में बाइबिल और हिंदू धर्म-ग्रंथों के हवाले से आर्य स्त्रियों के लिए 'पातिव्रत्य' को महान् आदर्श बताते हुए कहा गया कि आदर्श स्त्री को बाइबिल और पूजा-पाठ के अतिरिक्त सिर्फ़ पति का आज्ञा पालन करते हुए अत्यंत पवित्र भाव से घर-गृहस्थी के कामों को अंजाम देना चाहिए (पृ. 145, 204)।

कई समाज-सुधारक संस्थाएँ भी स्त्रियों को आचरण-सिखाने की दिशा में प्रयासरत थीं। मसलन् रूहेलखण्ड साहित्य समाज— जिसके सदस्य हिंदू और मुसलमान दोनों थे— ने पण्डित ताराचंद शास्त्री से *स्त्री-धर्म संग्रह* शीर्षक पुस्तक तैयार करवाई। इस आचरण-संहिता का उद्देश्य था धर्म-शास्त्रों के हवाले से स्त्रियों को घरेलू दासी बनाना। इसमें पति-सेवा को ईश्वर सेवा के समतुल्य कहा गया। स्त्रियों को संन्यास लेने की मनाही की गयी। सुबह की प्रार्थना से भी बरजा गया क्योंकि ऐसा करने पर 'पति की सेवा, उसके लिए नाश्ते-भोजन की तैयारी में बाधा पहुँचेगी। पत्नी को वेद-पुराणों को पढ़कर औषधियों, भोजन और रीति-रिवाज़ों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए' (पृ. 11-12)। इसी श्रेणी में खत्री हितकारी सभा, आगरा की ओर से लिखवाई गयी मुंशी जीवराम कपूर की *स्त्रीधर्मसार* [40] में भी शास्त्रों के हवाले से कहा गया कि 'स्त्रियों कमअकल होती हैं, अतः उन्हें कोई भी निर्णय, पति की आज्ञा के बिना, स्वतंत्र रूप से नहीं लेना चाहिए' (पृ. 28)। ये आचरण-'टेक्स्ट' धर्म और शास्त्र के हवाले से स्त्री को परिवार और घरेलू श्रम के दायरे में रहते हुए शिक्षित होने एवं आत्मनियंत्रण द्वारा पितृसत्ता के अनुकूल बनने की सलाह दे रहे थे। कमख़र्ची, हुनरमंदी और हस्तकलाओं को इस तरह की पुस्तकों में बहुत महत्त्व दिया गया। स्त्रियों के बेकार और आलसी हो जाने का डर तथाकथित समाज-सुधारकों की चिंता का गहन विषय था और उससे भी बड़ी चिंता थी वर्ग-विभेद के पूरे समीकरण के गड़बड़ाने की— एक अच्छा घर-जिसमें नौकरों पर कड़ा अनुशासन रहे, बच्चे समुचित सामाजिक व्यवहार सीखें और अधीनस्थ वर्ग हमेशा अधीन रहे— इसका सारा जिम्मा 'घरनी' पर था। आचरण-पुस्तकों के आदर्श एक नयी मध्यवर्गीय स्त्री-छवि का निर्माण करते थे, जिसे श्रम से पुरुष की आर्थिक मदद भी करनी थी और 'अधीन' भी रहना था। *स्त्रीधर्म-सार* और *बहिश्ती ज़ेवर* सरीखी पुस्तकें स्त्रियों को समझदारी से ख़रीदारी करना, कम ख़र्च में घर चलाने के गुर सिखाती थीं, कि कैसे वस्तु की गुणवत्ता परखी जाए (*स्त्री-धर्मसार*)। स्त्रियों को सिखाया गया कि वे कैसे आमद-ख़र्च का,

---

[38] बाबू ईशुरी प्रसाद (1860), *डोमैस्टिक मैनर्स*, बनारस मेडिकल हॉल प्रेस, बनारस.

[39] *रत्नमाला,* वही.

[40] जीवराम कपूर खत्री, वही.

आचरण–संहिताएँ स्त्रियों को आत्मनियंत्रण द्वारा 'आदर्श' बनने का उपदेश भी दे रही थीं। मौलाना थानवी ने *बहिश्ती जेवर* में औरतों को सादे भोजन की सलाह देते हुए लिखा— 'कभी भी बढ़िया भोजन को अपनी आदत मत बनाओ, क्योंकि वक़्त कभी एक–सा नहीं रहता।' *वनिताबुद्धिप्रकाशिनी* में रामलाल ने मनमानी वस्तु ख़रीद कर खा लेने वाली स्त्रियों के 'चटोरे स्वभाव' की निंदा की



तनख़्वाहों और सुविधाओं के लिए रुपयों का हिसाब–किताब रखें। *बहिश्ती ज़ेवर* में कहा गया कि 'पति को समाज में अपने विशिष्ट गुणों के कारण सम्मान मिलता है, जबकि औरत को पति के आज्ञा–पालन और बच्चों की देखभाल के कारण सम्मान मिलता है' (पृ. 310)।

हाली ने *मजलिस–उन–निस्सां* में पर्दे के भीतर रहकर भी घर–ख़र्च और नौकरों पर नियंत्रण के गुर सिखाते हुए उसे परिवार में सम्मान की हक़दार बताया गया। हाली ने विस्तार से पुस्तक में बताया है कि नौकर प्रत्येक रुपये में से चार आने अपने पास रख लेना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं इसलिए माँ अपनी बेटी से कहती है— 'अब मैं तुम्हें बताने जा रही हूँ कि परदे में रहकर भी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में बाज़ार का काम कैसे किया जाए। तुम्हें घर में काम करने आने वालों (पानीवाला, ज़मादारनी, सब्जीवाला, दूधवाली, चूड़िहारिन) से हमेशा बाज़ार भावों के बारे में पूछताछ करते रहनी चाहिए। पंद्रह–पंद्रह दिनों पर तुम्हें अनाज, तेल, मसाले का भाव उनसे जानना चाहिए ताकि जान सको कि जो नौकर तुम्हें बाहर से सामान लाकर दे रहा है उसकी क़ीमत सही है कि नहीं। ताज़ा सब्ज़ी, मांस, दही–दूध जैसी रोज़ की चीज़ों की ख़रीदारी के लिए हर दिन एक ही आदमी को बार–बार बाज़ार भेजना ठीक नहीं है। इस काम के लिए नौकर बदलते रहने से नौकर अपनी औक़ात में रहते हैं (पृ. 71–72)।'

ये आचरण–संहिताएँ स्त्रियों को आत्मनियंत्रण द्वारा 'आदर्श' बनने का उपदेश भी दे रही थीं। मौलाना थानवी ने *बहिश्ती जेवर* में औरतों को सादे भोजन की सलाह देते हुए लिखा— 'कभी भी बढ़िया भोजन को अपनी आदत मत बनाओ, क्योंकि वक़्त कभी एक–सा नहीं रहता।' *वनिताबुद्धिप्रकाशिनी*[41] में रामलाल ने मनमानी वस्तु ख़रीद कर खा लेने वाली स्त्रियों के 'चटोरे स्वभाव' की निंदा की (पृ. 44) और *मिरात–उल–उरूस* में नज़ीर अहमद ने अकबरी के नकारात्मक चरित्र को निंदनीय बताते हुए कहा कि वह बाज़ार से मेवे–मिठाइयाँ मँगवाती है— घर का भोजन पसंद नहीं करती। इसी तर्ज़ पर मेरठ कचहरी के एक छोटे से मुलाज़िम हरिहर हीरालाल ने *स्त्रीविचार*[42] शीर्षक पुस्तक में औरतों के 'चटोरेपन' को वेश्याओं का चारित्रिक गुण कहा (पृ. 55)। *स्त्री–धर्मसार* में कहा गया कि 'जिस स्त्री की जीभ चटोरी होती है, उसके घर से दरिद्रता कभी नहीं जाती (पृ. 120)। इन उपदेशकों का मानना है कि स्त्रियों को धन बचा कर आभूषण ख़रीदने चाहिए ताकि आड़े वक़्त में काम आ सकें।

---

[41] रामलाल, वही.

[42] हरिहर हीरालाल, वही.

अच्छी स्त्री वह है जो सास के कहे अनुसार घर का सारा काम करती रहे, बहस न करे और अच्छी सास वह है जो बहू को विनम्रता से सदुपदेश देती रहे। आचरण-लेखकों ने घरेलू श्रम के मसले पर अच्छी-बुरी, शिक्षित-अशिक्षित, विनम्र-ढीठ स्त्रियों में विभाजक रेखा खींच प्रक्रिया में एक स्त्री यानी सास को पितृसत्ता के एजेंट की भूमिका प्रदान की।



सम्भावित विद्यार्थियों के मद्देनज़र लिखे गये ये सभी 'टेक्स्ट' आदर्शस्त्री की छवि को अत्यंत तर्कसम्मत ढंग से लड़कियों के मस्तिष्क और कार्य-व्यापार को नियंत्रित करने का संजाल रचते हैं। अक्सर ये संवाद शैली में लिखे गये हैं और कथानक में अच्छी औरत-बुरी औरत का विलोम प्रस्तुत करते हैं। पढ़ी-लिखी स्त्री को महीन और हल्क़ा काम और अनपढ़ बहू को मोटा-झोटा, कुटाई-पिसाई का काम दिया जाता है। पण्डित गौरीदत्त की *देवरानी-जेठानी की कहानी* में घर का सारा भारी काम सास अनपढ़ बहू यानी जेठानी को देती है और पढ़ी-लिखी छोटी बहू के जिम्मे भोजन पकाना, कढ़ाई-बुनाई के काम आते हैं। ये पुस्तकें अशिक्षित स्त्री को अनिवार्यतः फूहड़, आलसी, नकारा, झगड़ालू के रूप में चित्रित करती हैं— जिसके ठीक विपरीत पढ़ी-लिखी स्त्री है जो शिक्षा के कारण सुघड़ और विनम्र है। *सास बहू का किस्सा : ज्ञान उपदेश* (1895)[43] में पण्डित लक्ष्मण प्रसाद ने सास की आज्ञा में रहने वाली बहू को 'अच्छी' बताते हुए बुरी बहू को सास से हाथापाई करते हुए चित्रित किया। उनके अनुसार अच्छी स्त्री वह है जो सास के कहे अनुसार घर का सारा काम करती रहे, बहस न करे और अच्छी सास वह है जो बहू को विनम्रता से सदुपदेश देती रहे। आचरण-लेखकों ने घरेलू श्रम के मसले पर अच्छी-बुरी, शिक्षित-अशिक्षित, विनम्र-ढीठ स्त्रियों में विभाजक रेखा खींच इस प्रक्रिया में एक स्त्री यानी सास को पितृसत्ता के एजेंट की भूमिका प्रदान की। इनमें अशिक्षित स्त्री को हेय, असामान्य, मूर्ख बताते हुए उसे कठिन श्रम के काम मसलन कुटाई-पिसाई पानी भरना, झाड़ू लगाना, सफ़ाई करते हुए चित्रित किया गया। उनके श्रम के शोषण की यह सोची समझी रणनीति थी— जिसकी व्यंजना यह थी कि जो अशिक्षित है वह भारी और कठोर श्रमिक बनने की पात्र है। इनमें अशिक्षित स्त्रियों को घरेलू दासी या प्रकारांतर से असंगठित क्षेत्र में अत्यधिक श्रमसाध्य कार्यों को करते हुए दिखाया गया जिसे बहुत ही कलात्मक ढंग से नयी पढ़ी-लिखी स्त्री-छवि से अलगाया गया। यह अशिक्षित स्त्री थी जो बुरी थी और अच्छी स्त्री के ठीक विपरीत थी— त्याज्य और उपेक्षा की पात्र लेकिन इसके बिना समाज और परिवार का काम चलने वाला भी नहीं था। आचरण-लेखक हिंदू हों या मुसलिम वे सब स्त्री के ख़ाली बैठने से भयभीत थे। आचरण-'टेक्स्ट' में से अधिकांश को सरकारी मान्यता एवं प्रेरणा मिली थी जिन्होंने स्कूली लड़कियों को बदलते समय और समाज की पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अनुरूप ढालने का काम किया। चाहे डिप्टी नज़ीर अहमद हों या पण्डित रामप्रसाद तिवारी (*रीतिरत्नाकर,* 1872) दोनों की चिंता अपने समुदायों की स्त्रियों के लिए समान थी। स्त्री की अपमानजनक और कुत्सित छवि प्रस्तुत करना रणनीति का हिस्सा था, जिसके भय से

---

[43] लक्ष्मणप्रसाद (1865), *सास बहू का क़िस्सा : ज्ञान उपदेश,* मदनमोहन प्रेस, आगरा.

वह स्वतंत्र चेता हो ही नहीं सकती थी। मसलन *रीतिरत्नाकर* में कहा गया कि 'मूर्खता रूपी पिशाचिनी औरतों को *खा रही है' (पृ. 2) जो मिरात-उल-उरुस* की तरह ही उस समय प्रचलित-स्त्री छवि के प्रति घृणा और अविश्वास के नुस्खे को ही प्रस्तावित करती है। अशिक्षित स्त्रियों की छवि के चित्रण में जिन रूढ़ चरित्रों का अनुकरण किया गया उनके अनुसार वे लड़ाकू, पति, सास-ससुर का अपमान करने वाली, कमअक्ल, ज़िद्दी हैं, उन्हें घर सँभालना नहीं आता, स्वतंत्र होकर बिगड़ जाती हैं और धन का नुक़सान कर डालती हैं, ठगों-चोरों के चंगुल में फँस कर सबकुछ गँवा बैठती हैं, आभूषण के प्रति उनका प्रेम निंदनीय है— उसके लिए वे कुछ भी करने को प्रस्तुत हैं। *रीतिरत्नाकर* में तो एक दुष्ट बहू अपनी सास के केशों को आग में जला डालती है।

1857 के तुरंत बाद के दौर में लिखे गये ये आचरण-टेक्स्ट स्त्रियों को प्रत्येक परिस्थिति में घर-बच्चों-पति की देखभाल करने की हुनर सीखकर परिवार को आर्थिक सम्बल प्रदान करने और आत्मनियंत्रण के नुस्खे सिखाते हैं।

IV

इन पुस्तकों में स्त्री के भीतर सामंती मूल्यों को पैबस्त करने के लिए आज्ञाकारिता, सच्चरित्रता, पातिव्रत्य और नैतिक शिक्षा पर बल दिया गया। पार्थ चटर्जी के मुताबिक़ 'इस नयी स्त्री को अपने ही समाज के पुरुषों और पश्चिमी स्त्री से भिन्न होना था।' आचरण-पुस्तकों के लेखकों को यह चिंता भी थी कि स्त्रियों को जैसी दरकार है वैसी शिक्षा मिल नहीं पा रही है। इस मुद्दे पर परस्पर असहमति भी थी। मसलन *बंगीय महिला* की भूमिका में तारकनाथ विश्वास ने लिखा, 'ऐसी बहुत कम पुस्तकें आयी हैं, जो स्त्रियों के पढ़ने लायक़ है, या जिन्हें पति अपनी पत्नी को पढ़ने के लिए दे सकें।'[44] इसी तरह *बंगाली बहू* की भूमिका में पूर्णचंद्र गुप्ता ने अब तक प्रकाशित पुस्तकों की विषय-वस्तु के प्रति असंतोष व्यक्त करते हुए लिखा, 'अब तक प्रकाशित पुस्तकें केवल पति-पत्नी संबंधी की शिक्षा देने के लिए लिखी गयी हैं, इनमें से एक भी, स्त्री को गृह-प्रबंधन नहीं सिखाती।'[45]

कोरी उपदेशात्मकता से पाठिकाओं को आकृष्ट नहीं किया जा सकेगा, यह अंदाज़ा आचरण-लेखकों को ही हो चुका था। गिरिजाप्रसन्न रायचौधरी की टिप्पणी थी कि 'ऐसी किताबें गुरुदास बाबू की पुस्तक दुकान में यूँ ही धूल खा रही हैं— हमें ऐसा नहीं लगता कि इनसे स्त्रियों का कुछ भला होने वाला है।'[46] पाठकों के लिए रुचिकर बनाने के लिए ये ज़रूरी था कि ऐसा टेक्स्ट लिखा जाए, जिसमें संवाद हों, और पति-पत्नी के पारस्परिक संवाद से अधिक रुचिकर और क्या हो सकता था। नव्य-पितृसत्तात्मक व्यवस्था में पति की कल्पना पत्नी के शिक्षक/गुरु के रूप में की गयी। शिष्या के माध्यम से गुरु 'घर के भीतर के संसार' की पुनर्रचना कर सकता था। घर के भीतर के 'स्पेस' की पुनर्रचना दो स्थितियों में सम्भव थी— पहली, कि स्त्रियाँ पढ़ें-लिखें और दूसरी स्थिति में घर के भीतर पति को सर्वशक्तिमान होना था। इन पुस्तकों में पहली स्थिति की वक़ालत बड़े पुरज़ोर ढंग से, अपनी-अपनी सीमाओं में की गयी, स्त्री-शिक्षा के पक्ष में बहुत से तर्क भी दिये गये। मसलन नागेंद्रबाला दासी ने *नारीधर्म* में लिखा— 'अशिक्षित व्यक्ति अपने जीवन का सही ढंग से निर्माण नहीं कर सकता,

---

[44] तारकनाथ विश्वास (1887), *बंगीय महिला,* द्वितीय सं., प्र. राजेंद्रलाल विश्वास, कलकत्ता.

[45] पूर्णचंद्र गुप्ता (1885), *बंगाली बहू,* प्रकाशक : ए.के. बनर्जी, कलकत्ता.

[46] गिरिजाप्रसन्न रायचौधरी (1888), *गृहलक्ष्मी,* द्वितीय संस्करण, प्रकाशक गुरुदास चटर्जी, कलकत्ता.

न ही शिक्षा के अभाव में उसकी प्रतिभा निखर सकती है। अज्ञानी और अशिक्षित व्यक्ति भीषण मनोवेदना से गुज़रता है और अक्सर समाज के लिए हानिकर होता है।'[47]

दूसरी स्थिति जिसमें स्त्री और गृहस्थी दोनों को पति के अधीनस्थ होना था— पर आम सहमति थी। *स्त्रीर प्रति स्वामीर उपदेश* में धीरेंद्रनाथ पाल ने बताया कि 'जन्म से विवाह तक लड़की को माँ शिक्षित करती है, विवाह के बाद पति ही उसका गुरु होता है। यदि स्त्री अपने पति के साथ संबंध की इस प्रकृति को समझ ले तो वह आजीवन पति की आज्ञा में रहेगी।' पुस्तक में पति-पत्नी संवाद द्रष्टव्य हैं :

> पति— मैं तुमसे बार-बार एक ही बात कहता हूँ, पर तुम पढ़ती-लिखती नहीं हो।
> पत्नी— क्या मुझे बाहर काम पर जाना है ?
> पति— हा...हा... तो पढ़ने-लिखने की ज़रूरत सिर्फ़ काम पर जाने के लिए होती है ? इसी को कहते हैं- स्त्री-बुद्धि ! इसीलिए तुम ऐसी बातें करती हो।[48]

धीरेंद्रनाथ पाल ने हिंदू स्त्री पर पाँच पुस्तकें लिखी थीं जिनमें उन्हें सही आचरण-की शिक्षा दी गयी थी— *स्त्रीर सहित कथोपकथन* (1884), *संगिनी* (1884), *द हिंदू वाइफ़* (1888), *द हिंदू साइंस ऑफ़ मैरेज* (1909) और *स्वामी स्त्री* जो 1926 में उनकी मृत्युपरांत छपी। इनमें से *स्त्रीर सहित कथोपकथन* की लोकप्रियता का अंदाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि 1884 से लेकर 1909 तक इसका आठ बार पुनःप्रकाशन हुआ। पुस्तक का विषय घरेलू जीवन है जिसमें सरल उपदेशों को पति-पत्नी के संवादों में समेटा गया है। भूमिका में धीरेंद्रनाथ पाल का कहना है— 'इस पुस्तक का उद्देश्य है पत्नियों को सलाह देना, लेकिन हम उनके पतियों से भी एक-दो बातें कहना चाहते हैं, इसलिए हम चाहते हैं इस छोटी-सी पुस्तक को वे भी ध्यान से पढ़ें तभी वे समझ पाएँगे कि जीवन में कैसे चलना है।'[49]

आचरण-पुस्तकों में शिक्षित स्त्री के भावी व्यवहार के प्रति भी दुश्चिंता व्यक्त की गयी है। मसलन पूर्णचंद्र गुप्ता ने *बंगाली बहू* में लिखा— 'पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ चूल्हे की आँच के पास नहीं बैठना चाहतीं। इसे वे अस्वास्थ्यकर बताती हुई कुर्सी पर बैठकर अख़बार पढ़ना पसंद करती हैं।'[50] ऐसी स्त्रियों को सही आचरण की ओर प्रेरित करने के लिए 'पश्चिमी स्त्री' का आदर्श सामने रखते हुए 'बंगीय महिला' में तारकनाथ विश्वास ने लिखा— 'पुराणों की बातें भले ही हमारी औरतें हँसी में उड़ा दें, लेकिन ये सच है कि हमारी साम्राज्ञी विक्टोरिया की बेटियाँ भी कभी-कभी अपने हाथों से खाना पकाने और परोसने का काम करती हैं, और इसके लिए वे शर्मिंदगी महसूस करने की बजाय गर्व करती हैं।'[51]

इसी तरह नागेंद्रबाला दासी ने भोजन पकाने को हिंदू स्त्री के धर्म से जोड़ा और स्त्रियों को उपदेश देते हुए *नारी धर्म* में लिखा— 'रानी होते हुए भी द्रौपदी और राजा रामचंद्र की भार्या होते हुए भी सीता अपने हाथों से भोजन पकाती थीं और पति, संतान और अभ्यागतों को परोसती थीं।'[52] नागेंद्रबाला दासी ने दो आचरण-पुस्तकें लिखकर इस क्षेत्र में स्त्री-लेखन का प्रतिनिधित्व किया। *नारी*

---

[47] नागेंद्रबाला दासी, *नारी धर्म*, प्रकाशक नागेंद्रबाला स्वयं, कलकत्ता : 17.

[48] धीरेंद्रनाथ पाल (1884), *स्त्रीर सहित कथोपकथन*, प्रकाशक वैष्णव चरण वसाक, कलकत्ता.

[49] वही, भूमिका : 2.

[50] पूर्णचंद्र गुप्ता (1885), *बंगाली बहू*, : 7-8.

[51] तारकनाथ विश्वास (1887), *बंगीय महिला* :19.

[52] नागेंद्रबाला दासी, *नारी धर्म* : 17, इस अंश का (अनु.) गरिमा श्रीवास्तव.

ओड़िया में जगबंधु सिंह ने तीन खण्डों में *गृहलक्ष्मी* उपन्यास लिखा। 1930 से 1940 के बीच प्रकाशित इस पुस्तक में पति-पत्नी के संवाद रोचक ढंग से लिखे गये। यह बताया गया कि शिक्षित पति घरेलू स्त्री को कैसे देवी लक्ष्मी में रूपांतरित कर सकता है।



धर्म (1900) और *गार्हस्थ्य धर्म* (1904) अब तक की आचरण-पुस्तकों से अलग थीं, क्योंकि नागेंद्रबाला दासी ने इनमें पति को पत्नी का परमेश्वर बताया और प्राचीन पितृसत्तात्मक मान्यता को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया। अब तक की आचरण-पुस्तकों में स्त्रियों की अशिक्षा को गृहकलह का कारण बताया जाता था, वहीं दासी ने सासों के दुर्व्यवहार की ओर इंगित किया। 'स्त्रीकर्तव्य', 'पतिव्रता', 'सामान्य शिक्षा', 'प्रगति या अवनति' और 'निष्कर्ष' जैसे पाँच शीर्षकों में व्यवस्थित *नारी धर्म* सख़्त हिदायतें देने वाली पुस्तक है। यह पितृसत्तात्मक व्यवस्था में मानसिक रूप से अनुकूलित स्त्री का मन-संसार हमारे सामने रख देती है। नागेंद्रबाला स्त्री के धर्म की व्याख्या करती हुई लिखती हैं— 'कई स्त्रियाँ यह शिकायत करती दीख पड़ती हैं कि उनका पति उनके प्रेम और पूजा का प्रत्युत्तर नहीं देता, तो उसे कैसे प्रेम किया जाए! इस तरह की बातचीत अपरिपक्वता का नमूना है।... पति ही स्त्री का परमेश्वर है... तुम्हें तो यह सोचना ही नहीं चाहिए कि वह तुम्हें प्यार करता है या नहीं... तुम्हें सिर्फ़ अपना कर्तव्य करना चाहिए और कोई अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए।'[53]

नागेंद्रबाला घरेलू जीवन में स्त्री की प्रबंध-कुशलता और निपुणता की तारीफ़ करते हुए लिखती हैं कि पत्नी को पति की गृहस्थी की हरेक वस्तु को ध्यान से सँभाल कर रखना चाहिए। इस तरह वह आधुनिक सुशिक्षित स्त्री के लिए गृहस्थी के कामों की अनिवार्य फ़ेहरिस्त भी प्रस्तुत कर देती है। नागेंद्रबाला दासी के विचारों की तुलना सत्रहवीं शताब्दी की कन्नड़ रचनाकार होनम्मा की पुस्तक *हदिबदेय धर्म* (पतिव्रता के कर्तव्य) से की जा सकती है, जिसमें होनम्मा ने पतिव्रताओं की प्रशंसा करते हुए उन्हें स्वर्ग में विशिष्ट पद पाने की अधिकारिणी बताया। नागेंद्रबाला भी उसी तर्ज़ पर लिखती हैं— 'पति ही पत्नी का परमेश्वर है, उसकी सेवा करना ही स्त्री का सबसे बड़ा धर्म है।'[54]

बांग्ला के आचरण-साहित्य के प्रभाव से ओड़िया में जगबंधु सिंह ने तीन खण्डों में *गृहलक्ष्मी* उपन्यास लिखा। 1930 से 1940 के बीच प्रकाशित इस पुस्तक में पति-पत्नी के संवाद रोचक ढंग से लिखे गये। यह बताया गया कि शिक्षित पति घरेलू स्त्री को कैसे देवी लक्ष्मी में रूपांतरित कर सकता है। *गृहलक्ष्मी* को बहुत सफलता मिली और केवल 1946 में इसका पाँच बार पुन:प्रकाशन हुआ। आवरण पृष्ठ पर समृद्धि और धन की प्रतीक देवी लक्ष्मी का चित्र छापा गया तथा भूमिका में कहा गया— 'भारतीय स्त्रियाँ अक्सर घर के बाहर की दुनिया से अपरिचित ही रह जाती हैं। पाठ्यपुस्तकों की जानकारी बहुत सीमित है। हमारे देश में लड़कियों को चौदह वर्ष की अवस्था के बाद स्कूल नहीं

[53] वही : 3.

[54] वही : 2.

वे उस स्त्री के उपयुक्त आचरण-की फ़ेहरिस्त बताते हैं, जिसका पति परदेश चला गया हो— 'पति के परदेश जाने पर पत्नी को बिल्कुल सजना-सँवरना नहीं चाहिए। अच्छा भोजन-वस्त्र त्याग देना चाहिए। पति के बिना ऐशो आराम की चीज़ों का उपयोग करके वह करेगी भी क्या। पतिव्रता का यही धर्म है— पति ही आनंद और संतुष्टि का एक मात्र स्रोत है, उसके सुख-दुख पत्नी के सुख-दुख भी होते हैं।'



जाने दिया जाता। इसलिए उनके लिए सामान्य ज्ञान को बढ़ाने वाली पुस्तकों की ज़रूरत है। अच्छी गृहिणी बनने के लिए उन्हें बहुत-सी बातों की जानकारी होना ज़रूरी है। इस अभाव की पूर्ति के लिए ही *गृहलक्ष्मी* की रचना की गयी है।'[55] तारकनाथ विश्वास की तरह जगबंधु सिंह को भी पढ़ी-लिखी स्त्री से भय है। इसलिए जो घर न सँभाले उसे 'अलक्ष्मी' की संज्ञा देते हुए कहते हैं— 'बिस्तर पर लेट कर उपन्यास पढ़ना, पत्नी का कर्तव्य नहीं है। आह! आधुनिक शिक्षित स्त्री भोजन पकाने से घृणा करती है, जबकि यह सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसके अभाव में हम खाएँगे क्या? खाये बिना हमारा अस्तित्व बचेगा कैसे?'[56] आगे, वे उस स्त्री के उपयुक्त आचरण की फ़ेहरिस्त बताते हैं, जिसका पति परदेश चला गया हो— 'पति के परदेश जाने पर पत्नी को बिल्कुल सजना-सँवरना नहीं चाहिए। अच्छा भोजन-वस्त्र त्याग देना चाहिए। पति के बिना ऐशो आराम की चीज़ों का उपयोग करके वह करेगी भी क्या। पतिव्रता का यही धर्म है— पति ही आनंद और संतुष्टि का एक मात्र स्रोत है, उसके सुख-दुख पत्नी के सुख-दुख भी होते हैं।'[57]

V

ये आचरण-पुस्तकें पितृसत्तात्मक समाज के ऐजेण्डे को नयी और बदली परिस्थितियों में और ज़्यादा पुरज़ोर ढंग से आगे बढ़ाती हैं। बढ़ते पश्चिमीकरण के प्रतिकार के रूप में उन पर नज़र डालना दिलचस्प हो सकता है। स्त्री-शिक्षा के प्रति उनका नज़रिया बहुत-से पूर्वग्रहों से भरा हुआ था। स्त्री का शिक्षित रूप भयकारक था। इनमें अक्सर सुशिक्षित उम्रदराज़ पति द्वारा उम्र में छोटी पत्नी को शिक्षित करता चित्रित किया गया और इस तरह पति-पत्नी की उम्र में बड़े अंतराल को संस्तुत और प्रशंसित किया गया। ऊपर से यह भले सुशिक्षित भारतीय स्त्री के निर्माण की प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण चरण दिखाई पड़े लेकिन अंतर्वस्तु के केंद्र में स्त्री को और भी अधिक पुरुषोपयोगी और अधीनस्थ बनाने की तैयारी है। स्त्री को उसके दोयम दर्जे का अहसास सबसे पहले घर के भीतर ही कराया जाता है और घर में ही उसके बौद्धिक और मानसिक व्यक्तित्व का निर्माण होता है। आचरण-पुस्तकों के लिए इसी घरेलू परिवेश का चुनाव किया गया जो स्त्रियों के लिए सुपरिचित, यथार्थ और प्रामाणिक परिवेश था। इनमें इक्का-दुक्का स्त्री रचनाकारों के नाम भी दीख पड़ते हैं— जिन्हें पितृसत्तात्मकता

---

[55] जगबंधु सिंह (1940), *गृहलक्ष्मी,* भाग-1, प्र. सं. कटक ट्रेडिंग कम्पनी : 2.

[56] जगबंधु सिंह (1946), *गृहलक्ष्मी,* भाग-1, पाँचवाँ संस्करण, कटक ट्रेडिंग कम्पनी : 3.

[57] वही : 18.

के मानसिक अनुकूलन और शिक्षित हो रही स्त्री के प्रारम्भिक साक्ष्यों के तौर पर पढ़ा जाना चाहिए। ये स्त्रियाँ अपनी ही अधीनता की पक्षधर दिखाई देती हैं क्योंकि परिवार और समाज की 'सेंसरशिप' से टकराने का साहस उनमें नहीं हैं। वे लिख कर अपने होने की तस्दीक करती हैं और जहाँ भी व्यवस्था के विपक्ष में लिखती हैं, वहाँ वे अपनी सही पहचान को छुपा ले जाती हैं।

प्रमाण के तौर पर 1882 में छपी *सीमंतनी उपदेश*[58] को देखा जा सकता है, जिसमें लेखिका के नाम की जगह एक 'अज्ञात हिंदू औरत' लिखा गया है। व्यवस्था के विरोध में बोलने का ख़तरा सीधे-सीधे ये स्त्रियाँ नहीं उठातीं और जो बोलती हैं वे पण्डिता रमाबाई सरीखी स्त्रियाँ हैं, जो हिंदू धर्म को त्याग चुकी हैं और भारतीय स्त्रियों की स्थिति में सुधार के लिए अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर अपनी बात रखती हैं। रमाबाई ने *हिंदू स्त्री का जीवन* में अमेरिकी पाठकों का आह्वान करते हुए लिखा— 'आप सभी जो इस पुस्तक को पढ़ रहे हैं, मेरे देश की स्त्रियों के बारे में सोचिए और जागिए, एक सामान्य भाव से उन्हें आजीवन दासता एवं नारकीय दुखों से मुक्त करने के लिए आगे बढ़िए। क्या आप नहीं आएँगे? मित्रो और हितैषी लोगो, शिक्षित जनों एवं मानवतावादियो, मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप सभी जो इसमें रुचि रखते हों या अपने साथी के प्रति दया रखते हों भारतीय पुत्रियों के रुदन से चीखें चाहे वह क्षीण ही क्यों न हो।'[59]

रमाबाई ने *मनुसंहिता* का अनुवाद प्रस्तुत कर हिंदू आचार-संहिताओं का आलोचनात्मक विश्लेषण किया। 1886 में वे इंग्लैण्ड से फिलाडेल्फ़िया जाकर रैचेल एल. बॉडले से मिलीं। बॉडले ने पुस्तक की भूमिका में दर्ज किया :

> ऊँची जाति की हिंदू स्त्रियों की वर्तमान स्थितियों को आचार-संहिताओं के नियमों की कसौटी पर लाने का प्रयोग पहले कभी नहीं किया गया। पाठक इस बात का ध्यान रखें कि रमाबाई ने *मनु-संहिता* के चुने हुए सूत्र सावधानीपूर्वक उद्धृत किये हैं— ये सूत्र पूरी किताब में फैले हैं। उन्हें पवित्र मानकर स्त्रियों को निरंतर उच्चारित करने का आदेश मिलता है, भारत में कुछ ही ऐसी स्त्रियाँ होंगी जिन्होंने शायद ही कभी उन्हें सुना हो (किसी पण्डित द्वारा) और उससे भी कम स्त्रियाँ होंगी जिन्होंने उन्हें (इन सूत्रों को) अपनी आँखों से देखा हो। यहाँ तक कि स्त्रियों की शिक्षा के मुद्दे पर काफ़ी उदारवादी माने जाने वाले अनंतशास्त्री ने भी पवित्र पुस्तकों को अपनी पत्नी व पुत्रियों से दूर रखा। संस्कृत साहित्य कविताओं के रूप में स्त्रियों तक पहुँचता था। उन्हें पवित्र-कर्मकाण्डों व अनुष्ठान से नहीं जोड़ा जाता था। कलकत्ता में अपनी विद्वत्ता की सार्वजनिक पहचान बना लेने के बाद ही रमाबाई मनु-संहिता देख पाई थीं। रमाबाई ने उद्धरणों में शुद्धता बनाए रखने के लिए अनुवाद करने में काफ़ी कड़ी मेहनत की। पूरी किताब में कही गयी बातें सटीकता से हैं। जब यह किताब भारत पहुँचेगी तो इन कथनों को नि:संदेह झूठे और अधार्मिक बताकर इन पर आक्रमण किया जाएगा और यह भी सम्भव है कि यूनाइटेड स्टेट्स में भी कुछ व्यक्ति इस तरह के प्रभाव को पैदा करने का प्रयास करें लेकिन रमाबाई की सत्य बोलने की इच्छा उनके इस दृढ़ निश्चय के साथ जुड़ी है कि जीर्ण-शीर्ण प्रथाओं और ख़तरनाक रिवाज़ों को प्रकाश में लाया जाए। भारत के अपने व्यापक अनुभव से जो कुछ उनके सामने प्रकट हुआ, रमाबाई ने कुछ भी छिपाया नहीं। उन्होंने ये सारी सूचनाएँ इसलिए प्रकाशित नहीं करवाईं कि उन्हें सम्मान या लाभ मिले बल्कि इसलिए कि इसके पीछे ईश्वरीय प्रेरणा है। उनका विश्वास था कि स्त्रियों की इस त्रासदी का उद्घाटन लोगों में करुणा का भाव जगाएगा और वे उनके उत्थान के लिए प्रेरित होंगे।[60]

पण्डिता रमाबाई उच्चशिक्षा प्राप्त थीं और उनका लेखन अपने समय से कहीं आगे के रैडिकल

[58] डॉ. धर्मवीर (सम्पा.) (2008), *सीमंतनी उपदेश,* वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.

[59] पण्डिता रमाबाई (2006), *हिंदू स्त्री का जीवन, हिंदी अनुवाद,* सम्पा. शम्भू जोशी, संवाद प्रकाशन, मेरठ : 100.

[60] वही : 17.



रमाबाई ने उद्धरणों में शुद्धता बनाए रखने के लिए अनुवाद करने में काफ़ी कड़ी मेहनत की। पूरी किताब में कही गयी बातें सटीकता से हैं। जब यह किताब भारत पहुँचेगी तो इन कथनों को निःसंदेह झूठे और अधार्मिक बताकर इन पर आक्रमण किया जाएगा और यह भी सम्भव है कि यूनाइटेड स्टेट्स में भी कुछ व्यक्ति इस तरह के प्रभाव को पैदा करने का प्रयास करें लेकिन रमाबाई की सत्य बोलने की इच्छा उनके इस दृढ़ निश्चय के साथ जुड़ी है कि जीर्ण-शीर्ण प्रथाओं और ख़तरनाक रिवाज़ों को प्रकाश में लाया जाए।

स्त्री-लेखन और स्त्री-सुधार के कार्यक्रमों के व्यावहारिक सिद्धांत प्रस्तुत करता है। लेकिन भारत के संदर्भ में उन स्त्रियों के लेखन को आचरण-पुस्तकों के बरअक्स देखने की आवश्यकता महसूस होती है, जो बमुश्किल साक्षर हो पाई थीं और पितृसत्ताक समाज की शृंखलाओं में जकड़ी हुई रचनारत थीं। उन्होंने आचरण-पुस्तकें/ संहिताएँ नहीं लिखीं बल्कि वे स्त्री के लिए निर्धारित आचरणों का रचनात्मक प्रतिरोध करती दीख पड़ती हैं। मसलन, बांग्ला की पहली स्त्री आत्मकथा *आमार जीवन* की रचनाकार राससुंदरी देवी जो छुप-छुप कर पढ़ना-लिखना सीखती हैं। प्रतिदिन प्रात: चार बजे से रात के बारह बजे तक निरंतर श्रम करती हैं। श्रम में, सेवा में, कर्तव्य में कोई व्यतिक्रम नहीं। 'अच्छी बहू', 'कुलीन नारी' के विशेषणों से सुसज्जित स्त्री, अपने गृहस्थी के दिनों का स्मरण 'यातनाप्रद' दिनों के रूप में करती हैं। उसे बचपन में 'अच्छी लड़की' की उपाधि मिली क्योंकि उसने खेल-कूद छोड़ कर एक लाचार रिश्तेदार की सहायता के क्रम में घर-गृहस्थी का काम सीख लिया बग़ैर जाने कि 'अच्छी लड़की' का तमग़ा उसके पैरों की बेड़ी बन जाएगा— 'इसके बाद मैं कभी खेल नहीं सकी, दिन-रात काम और बस काम।' विवाह के बाद ही वह समझ जाती है कि अच्छी स्त्री और सद्गृहिणी का ख़िताब कृत्रिम है। सुयोग्य गृहिणी बनने के बाद भी अपना स्थान परिवार में सुरक्षित रख पाएगी, इसमें संदेह है, क्योंकि वह समझ गयी है कि स्त्री परिवार के लिए एक देह है, मर्यादा है, वंशबेल बढ़ाने का साधन, वह 'माँ' है पत्नी है— जिसका अपना कुछ भी नहीं, 'जब मैं अपने पिता के घर थी, तब तक मेरा एक नाम था, जो बहुत पहले कहीं खो गया। अब मैं विपिन बिहारी सरकार, द्वारकानाथ सरकार, किशोरीलाल और श्यामसुंदरी की माँ हूँ। अब मैं सबकी माँ हूँ।'

आमार जीवन में राससुंदरी उसी गृहस्थ जीवन को पिंजरे की संज्ञा देती है— जिसे सँवारने, सुधारने के लिए आचरण-पुस्तकें लिखी जा रही थीं— 'ससुराल का जीवन मेरे लिए किसी पिंजरे से कम न था— जीवनपर्यंत अब मुझे इसी पिंजरे में रहना था। मुझे अपने परिवार से छीन लिया गया था... धीरे-धीरे मैं एक पालतू पक्षी बन गयी।' इस सबके बदले में उन्हें सिर्फ़ अपना जीवन देना पड़ा, सिर्फ़ उनकी स्वतंत्रता छीन ली गयी यहाँ तक कि माँ के मरने पर भी उन्हें मायके जाने की इजाज़त नहीं मिलती।[61] जिस स्त्री के आचरण को सुधारने और पतिव्रता बनाने के लिए सारी क़वायद की जा रही थी, वही कहती है— 'जब भी पीछे देखती हूँ, घृणा से मन भर जाता है, टशर की साड़ी, भारी जड़ाऊ जेवर, शंख, चूड़ियाँ, सिंदूर...सब परतंत्रता की बेड़ियाँ।' राससुंदरी हिंदू-स्त्री की परतंत्रता के कारणों की पड़ताल करती दिखाई देती है। स्त्री को पुरुष संबंधियों से बातचीत करने की आज्ञा नहीं—

---

[61] दीपेश चक्रवर्ती (1994), 'द डिफ़रेंस/डेफ़रल ऑफ़ ए कॉलोनियल मॉडर्निटी : पब्लिक डिबेट्स ऑन डोमेस्टिसिटी इन ब्रिटिश बंगाल', *सबालटर्न स्टडीज़*, खण्ड-8, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.



***आमार जीवन* की रचनाकार राससुंदरी देवी जो छुप-छुप कर पढ़ना-लिखना सीखती हैं। प्रतिदिन प्रातः चार बजे से रात के बारह बजे तक निरंतर श्रम करती हैं। श्रम में, सेवा में, कर्तव्य में कोई व्यतिक्रम नहीं। 'अच्छी बहू', 'कुलीन नारी' के विशेषणों से सुसज्जित स्त्री, अपने गृहस्थी के दिनों का स्मरण 'यातनाप्रद' दिनों के रूप में करती है।... 'अच्छी लड़की' का तमग़ा उसके पैरों की बेड़ी बन जाएगा— 'इसके बाद मैं कभी खेल नहीं सकी, दिन-रात काम और बस काम।**

उसे अपना जीवन सुधारने का समय नहीं। अकारण नहीं कि उसकी आत्मकथा का प्रकाशन पति की मृत्यु के साल भर बाद होता है। आचरण–पुस्तकें स्त्री को जिस शयनकक्ष, भण्डारघर और रसोईघर के कर्तव्य सिखा रही थीं, उन्हें राससुंदरी उन कार्यों में गिनती हैं जो संवेदनात्मक और बौद्धिक तृप्ति नहीं देते और ऐसे कार्यों को 'मज़दूरी' की संज्ञा देती हैं।[62]

ओड़िया में *गृहलक्ष्मी* के रचनाकार जगबंधुसिंह के बरअक्स सरला देवी *नारीरा दाबी* (स्त्री अधिकार) (हिंदुस्तान ग्रंथमाला, कटक, 1934) रेबा राय *नीरबे* (उत्कल साहित्य, चैत्र, 1304, पृ. 51–53), कुंतला कुमारी सबत *आधुनिक धर्म समस्या* (उत्कल साहित्य 1391, 31/9, 10 पौष, माघ 1313 वर्ष, पृ. 391–94), शैलबाला दास *जनसाधारणे स्त्री शिक्खा बिस्तारा उपाय* (स्त्री शिक्षा के प्रसार के उपाय) (उत्कल साहित्य, 2, ज्येष्ठ 1323 वर्ष, पृ. 73–80), कोकिला देवी *बिलासिनी* (उत्कल साहित्य, 20/5 भाद्र 1323 हिंदुस्तान ग्रंथमाला, कटक, 1934) आदि को देखा जा सकता है। ये लेखिकाएँ स्त्री के आधुनिकीकरण और सार्वजनिक जीवन में स्त्री की सशक्त भागीदारी के पक्ष में निरंतर लिख रही थीं। इनकी चिंता का क्षेत्र घर–गृहस्थी से कहीं आगे स्वतंत्रता–आंदोलन में हिस्सेदारी से लेकर ट्रेड–यूनियन आंदोलनों तक विस्तृत था। इनके लेखन में ओड़िया समाज में नवजागरण की चेतना, ब्राह्म समाज का प्रभाव, विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए किये जाने वाले सामूहिक प्रयास, अस्पृश्यता का विरोध जैसे मुद्दों ने प्रमुखता पाई।

सरला देवी ने *नारीरा दाबी* में 'स्त्री समानता' पर टिप्पणी करते हुए लिखा :

> हमारे हिंदू समाज में, पुरुषों ने स्त्रियों को बाहरी दुनिया से अलग करके रखा हुआ है। जिस राष्ट्र की आधी आबादी लकड़ी के कुंदे की तरह बेजान पड़ी हुई हो, वह कोई भी लड़ाई नहीं जीत सकता। यह बड़ी ही असुविधाजनक स्थिति है। जब तक स्त्री और पुरुष में समानता और सौमनस्यता नहीं आ जाती, हिंदू–समाज के विकास की कल्पना भी कठिन है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि पुरुषों को जो कुछ भी मिला हुआ है— उस पर स्त्रियों का भी समानाधिकार होना चाहिए। यदि स्त्रियों को अधिकार मिल गये और वे उनका सदुपयोग नहीं कर पाईं, तो इसका उत्तरदायित्व भी हम सबको ही लेना होगा। जिसे ग़लती करने का अधिकार है, उसमें सत्य का सामना करने की भी क्षमता होनी चाहिए। स्त्री और पुरुष दोनों को समान दण्ड दिया जाना चाहिए, सिर्फ़ स्त्रियाँ ही दण्ड की भागी क्यों हों? पुरुष जब सदाशय हो जाएँगे तो उन्हें अपनी ग़लती का अहसास अपने आप हो जाएगा।[63]

नारीरा दाबी की तुलना *अ विंडिकेशन ऑफ़ द राइट्स ऑफ़ अ वुमॅन* (मेरी वोल्सनक्रॉफ़्ट,

---

[62] गरिमा श्रीवास्तव (2012), 'सवर्ण स्त्री, प्रति आख्यान', लेख *परिचय* पत्रिका, अप्रैल–सितम्बर, वाराणसी : 26–50.

[63] सच्चिदानंद मोहंती (2011), 'सरला देवी' *मेकर्स ऑफ़ इण्डियन लिटरेचर,* साहित्य अकादेमी, प्रथम संस्करण, (हिंदी अनुवाद : गरिमा श्रीवास्तव,) नयी दिल्ली : 48–50.

1792) से की जा सकती है। सिर्फ़ कक्षा सात तक पढ़ी और दकियानूसी कायस्थ परिवार में जन्मी सरला देवी लिखती हैं : 'लोगों का मानना है कि नारी नरक का द्वार है, ईश्वर का तो जैसे स्त्री से कोई संबंध है ही नहीं; वह तो मानों सिर्फ़ पुरुष की सम्पत्ति है, वे समझते हैं कि सारे पाप स्त्री ही करती है— पुरुष तो सर्वदा पापमुक्त है— ऐसी परम्परा और ऐसे धर्म को मैं दमनकारी और मृत समझती हूँ।'[64]

सरला देवी उन स्त्रियों की श्रेणी में आती हैं, जिन्हें 'घरेलू' कहा जाता है। लेकिन इस काल की अन्य स्त्री रचनाकारों के अब तक उपेक्षित गद्य, पत्रों, डायरियों, कविताओं यात्रा-वृत्तांतों को देखकर पता चलता है कि वे अपने समय और समाज के घटनाचक्रों के साथ-साथ निजी अनुभवों को भी अभिव्यक्त कर रही थीं। सरला देवी के गद्य में इतिहास, राजनीति, लिंग और संस्कृति के पारस्परिक संबंध और अंतर्विरोधों को पढ़ा जा सकता है। उनकी चिंता 'स्त्री' तक सीमित नहीं है। लेखन संदर्भ घरेलू और परिवेश पारिवारिक होते हुए भी वैचारिक और सौंदर्य-चेतना से समन्वित हैं जो आचरण-पुस्तकों के बरअक्स स्त्री बौद्धिकता की जटिलता और बहुआयामिता को बताते हैं। इसकी बानगी 1930 में 'जेल से लिखे पत्र'[65] में देखी जा सकती है। सरला देवी अपने पति को 'प्रिय भागु बाबू' कहकर सम्बोधित करती हैं—

23-6-30 वेल्लोर
द प्रेसीडेंसी जेल फ़ॉर वुमॅन
राज वेल्लोर
(मद्रास प्रेसीडेंसी)

प्रिय भागु बाबू!

मुझे यह बताते हुए प्रसन्नता हो रही है कि दूसरी राजनीतिक क़ैदियों के साथ मेरा समय अच्छी तरह व्यतीत हो रहा है। तीन या चार के अलावा हममें से अधिकांश 'बी' श्रेणी की क़ैदी हैं। फिर भी, ए और बी श्रेणी के राजनीतिक क़ैदियों में कोई अंतर नहीं है। हमारा भोजन समान है और जेल-अधीक्षक की कृपा से हमने टीन के शेड में एक कामचलाऊ-सा रसोईघर भी बना लिया है। अधीक्षक मेज़र ख़ान खुशमिज़ाज और तहज़ीबदार है जो सुबह के राउंड में यह देखने आता है कि हम सब को कोई असुविधा तो नहीं तथा हमारी आवश्यकताएँ पूरी की जा रही हैं या नहीं। हमारे बीच अधिकतर स्त्रियाँ आंध्र की हैं, जिनमें दो उम्रदराज़ विधवाएँ हैं, जिन्हें छह-छह महीने की सज़ा हुई है।

आप शायद सोचते होंगे कि मैं, यहाँ यूँ ही वक़्त बर्बाद करती होऊँगी। मैं यहाँ अंग्रेज़ी की पढ़ाई में व्यस्त हूँ। दूसरी स्त्रियाँ भी मेरी ही तरह कुछ न कुछ सीखने में व्यस्त हैं— कुछ चरखा कातती हैं और कुछ संगीत का अभ्यास करती हैं। अंग्रेज़ी और हिंदी की कक्षाएँ नियमित लगती हैं जिनमें अंग्रेज़ी, मेरी मित्र श्रीमती लक्ष्मीपति बी.ए. और हिंदी, दुर्गाबाई पढ़ाती हैं, जो मेरी सर्वाधिक आत्मीय हैं। दुर्गाबाई बहुत ही चतुर मेधावी और सुंदर युवा आंध्र महिला हैं जो मद्रास के सत्याग्रह आंदोलन का नेतृत्व कर चुकी हैं।

सुबह जेल-कोठरी से बाहर आने और शाम को भीतर जाने के पहले तक हम सब लगातार काम करती रहती हैं और ऐसा लगता है, प्रत्येक कार्य घड़ी की सुई की तरह ठीक समय पर हो रहा है। सुबह, छोटी हाज़िरी के तुरंत बाद हममें से कुछ सामूहिक तौर पर *भगवद् गीता* का पाठ

---

[64] राजेंद्र राजू (1995), *मेरे विद्रोही जीवन की कहानी,* महीयसी महिला : सरला (ओड़िया) विजय बुक स्टोर, बहरमपुर : 14.

[65] सच्चिदानंद मोहंती (2011), वही.



सरला देवी लिखती हैं : 'लोगों का मानना है कि नारी नरक का द्वार है, ईश्वर का तो जैसे स्त्री से कोई संबंध है ही नहीं; वह तो मानों सिर्फ़ पुरुष की सम्पत्ति है, वे समझते हैं कि सारे पाप स्त्री ही करती है— पुरुष तो सर्वदा पापमुक्त है— ऐसी परम्परा और ऐसे धर्म को मैं दमनकारी और मृत समझती हूँ।'

करती हैं। मन होने पर कभी–कभी मैं भी शामिल हो जाती हूँ। मेरी एक मित्र और भी है, जिसका नाम कमला है, जो है तो आंध्र से लेकिन बांग्ला बहुत सुंदर बोलती है।

मैं चाहती हूँ कि आप दुर्गापूजा की छुट्टियों में टिकुन को लेकर यहाँ आयें। आप को, और टिकुन को देखने के लिए मैं तरस रही हूँ। मुझे विश्वास है आपने टिकुन को स्कूल में भर्ती करवा दिया होगा, और आप उसकी सुविधा का ख़याल रखते होंगे। यदि आप उसपर विशेष ध्यान दें, तो मुझे बहुत अच्छा लगेगा, ताकि वह जीवन के इन प्रारम्भिक वर्षों में जहाँ तक सम्भव हो सके, अच्छा प्रशिक्षण पाए। शिशु का भविष्य इस पर निर्भर करता है कि उसे किस तरह की तहज़ीब और परिवेश वर्तमान में मिला है। जबकि मैं घर से दूर हूँ और अगले छह महीनों तक लौट भी नहीं पाऊँगी, ऐसे में हमारी एकमात्र संतान को सँभालने का दायित्व सिर्फ़ आपके कंधों पर है। यहाँ आने के पहले आपने मुझे समझाया था कि आप नन्हें टिकुन को अलकाश्रम भेज देंगे। यदि अभी तक उसे वहाँ नहीं भेजा गया है तो कृपया यथाशीघ्र उसे वहाँ भेज दीजिए। मेरा सुझाव है कि अच्छा रहेगा यदि आप भी वहीं चले जाएँ, जिससे टिकुन को अकेलापन महसूस न हो।

आपका पत्र मुझे जगतसिंहपुर में मिला था, जहाँ मैं चैन के विवाह समारोह में शामिल होने गयी थी। उसके बाद आपका कोई पत्र मुझे नहीं मिला। आश्चर्य है कि आपके पत्र गये कहाँ! कृपया वहाँ के पोस्टमास्टर से पता कर लीजिए कि क्या उन्हें वह मिले। मुझे बापा और माँ का पूरा समाचार दीजिए और मेरे बंकू भाई, जोती, नानी मीरा, टीमा, रीनी, शांति, हरि, बापा बोउ व मामा–मामियों का समाचार दीजिए। और, गोप बाबू के परिवार का क्या हाल है? अलकाश्रम? सबके विषय में मुझे शीघ्रातिशीघ्र लिखिए क्योंकि मैं अपने घर और उत्कल के बारे में सब कुछ जानने को उत्सुक हूँ।

वैसे तो मैं बिल्कुल ताज़ादम और स्वस्थ दीखती हूँ लेकिन यहाँ अधिक मिर्च वाला तीखा भोजन ही मिलता है, जो मुझे पसंद नहीं है। मेरी रुचि के भोजन के अभाव को भरने के लिए जेल अधीक्षक ने प्रतिदिन एक अण्डे की व्यवस्था करवा दी है।

आपको याद होगा कि कुछ वर्ष पहले मैंने बी. नायक को सौ रुपये उधार दिये थे जिसे लौटाने का वायदा उसने किया था। इस आशय का उसका पत्र आपके पास रखा होना चाहिए। मैं चाहती हूँ कि आप कोर्ट में नालिश करके रुपये वापस ले लें। कृपया बी. दास (एडवोकेट) को मेरे उधार लिए हुए पंद्रह रुपये वापस दे दें।

मुझे आधा दर्जन जवाकुसुम तेल की शीशियों और तीन मोटी कापियों की ज़रूरत है, यदि सम्भव हो तो भिजवा दीजिए और निरंजन के भाई राधामोहन को रवींद्रनाथ की वो पुस्तकें भेजने को कह दें, जो मैं उनके घर छोड़ आयी थी। उत्कल खादी विभाग के प्रबंधक बांशु रत्न को खादी का एक मोटा, रंगीन और सुंदर कम्बल मेरे लिए भेजने के लिए कह दीजिए। मेरी सभी साड़ियाँ फट गयी हैं, बक्से में से कुछ खद्दर निकाल कर भिजवा दीजिए। दुर्गा आपसे मिलने को उत्सुक है। टिकुन को मेरा स्नेह। कृपया पत्र में टिकुन की दिनचर्या के बारे में लिखिए। नमस्कार सहित—

–आपकी

सरला देवी

सरलादेवी का यह पत्र आचरण–साहित्य का प्रतिरोधी विमर्श प्रस्तुत करता है जहाँ स्त्री एक



फ़ैज़ुन्निसा लेखन में तथाकथित स्त्रीत्व का अतिक्रमण करते हुए स्त्री-यौनिकता के प्रश्नों पर विचार करती हैं। वह उस समाज का आंतरिक परिवेश चित्रित करती हैं जहाँ धर्म और पितृसत्ता का दबाव स्त्री को 'आत्म' से संवाद करने की छूट नहीं देता। अपने समय से कहीं आगे की इस रचना पर पाठकों और आलोचकों ने विशेष ध्यान नहीं दिया।

राजनीतिक बंदी के रूप बंधन में भी मुक्ति का अहसास करती है— वह खान-पान, वस्त्र पहनने की इच्छा-अनिच्छा को उन्मुक्तता के साथ अभिव्यक्त कर रही है। साथ ही व्यावहारिक और सांसारिक सामान्य बोध का प्रयोग करते हुए पति को सलाह भी दे रही है— यह वह नयी स्त्री है— जिसकी कल्पना भी आचरण-लेखकों के लिए भयकारक थी।

इसके अतिरिक्त बंगला की आचरण-पुस्तकों के बरअक्स 1876 में प्रकाशित नवाब फ़ैज़ुन्निसा बेगम के *रूपजलाल* को भी देखा जाना चाहिए जो किसी भी बंगाली मुस्लिम स्त्री द्वारा लिखा पहला उपन्यास है। इसमें औपनिवेशिक बंगाली मुसलमान स्त्री के जीवन के यथार्थ चित्र हैं। जहाँ *आमार जीवन* को स्त्री के दैहिक और आध्यात्मिक समर्पण के दस्तावेज़ के रूप में पढ़ा जा सकता है, वहीं *रूपजलाल* जैसी रचना मुसलमान समाज में प्रचलित और इस्लाम से मान्यता प्राप्त बहुपत्नीत्व के ख़िलाफ़ आलोचनात्मक तर्क विकसित करती है। उपन्यास की नायिका रूपबानो अपने पति के बहुविवाह के प्रति कड़ा प्रतिरोध दर्ज कराती है, लेकिन अंततः उसे परम्परा के आगे समर्पण करना पड़ता है। रूपबानो भले ही 'बहुपत्नीत्व' के सामने घुटने टेक देती है लेकिन नवाब फ़ैज़ुन्निसा ने निजी जीवन में पति के बहु-विवाह पर आपत्ति करते हुए अलग रहने का निर्णय लिया था। उपन्यास की भूमिका में इसका उल्लेख करते हुए विफल वैवाहिक जीवन की यंत्रणा को रचना की प्रेरणा बताया गया है। *रूपजलाल* का कथ्य प्रेम, युद्ध, बहुपत्नीत्व के दायरे में ही घूमता है लेकिन उसकी रचना-दृष्टि अपने समकालीन लेखकों मीर मुशर्रफ़ हुसैन, काज़म अल कुरैशी, रतननाथ सरशार आदि से कहीं आगे है।

फ़ैज़ुन्निसा लेखन में तथाकथित स्त्रीत्व का अतिक्रमण करते हुए स्त्री-यौनिकता के प्रश्नों पर विचार करती हैं। वह उस समाज का आंतरिक परिवेश चित्रित करती हैं जहाँ धर्म और पितृसत्ता का दबाव स्त्री को 'आत्म' से संवाद करने की छूट नहीं देता। अपने समय से कहीं आगे की इस रचना पर पाठकों और आलोचकों ने विशेष ध्यान नहीं दिया। फ़ैज़ुन्निसा बांग्ला में लिखती थी लेकिन उन्हें अरबी, फ़ारसी और संस्कृत का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने फैज़ुन लाइब्रेरी बनाई थी और रवींद्रनाथ ठाकुर की बहन स्वर्णकुमारी देवी (बांग्ला की पहली स्त्री-उपन्यासकार (*दीपनिर्वाण,* 1868) के स्त्री-संगठन शक्ति समिति की प्रखर सदस्य थीं। उन्हें औपनिवेशिक बंगाल और अन्य प्रांतों में हो रही राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक हलचलों की पूरी जानकारी थी। अब्दुल कुदस ने *आलोर दिशारी*[66] में लिखा है कि 'फ़ैज़ुन्निसा प्रतिदिन कुछ घंटे लाइब्रेरी में बिताती थी और 'इस्लाम प्रचारक' और 'सुधारक' जैसी पत्रिकाएँ नियमित तौर पर ख़रीदती थी। ऐसे वक़्त में, जब स्त्री से सिर्फ़ यह अपेक्षा

[66] अब्दुल कुदस (1979), *द एनलाइटेंड गाइड,* बंगला साहित्य अकादेमी, ढाका.

की जाती थी कि वह घर को आरामदायक शरणस्थली बनाए, कुशल गृहिणी बने, ऐसे में एक मुसलमान स्त्री का उपन्यास लिखना परम्परागत मूल्यों को चुनौती था और साहसिक अभियान की शुरुआत भी। भूमिका में वे बहुपत्नीत्व की कड़ी आलोचना करते हुए अपने परिवार के बारे में बहुत बोल्ड ढंग से लिखती हैं।'[67] लेकिन उपन्यास की नायिका का बहुपत्नीत्व प्रथा के आगे घुटने टेक देना बताता है कि वह जिस समाज-व्यवस्था का अंग है, उसकी समस्याओं को देखने का नज़रिया क्या है। निजी तौर पर फ़ैज़ुन्निसा द्वारा बहुपत्नीत्व को चुनौती देना और पारिवारिक सुरक्षा के दायरे से बाहर निकल कर एक आत्मनिर्भर ऐजेंट के रूप में सामने आना नयी स्त्री की छवि का दिशा-निर्देश करता है। अपनी स्वतंत्रता के लिए स्त्री का संघर्ष वस्तुतः राष्ट्रवादी क्रांति के लिए किये जाने वाले संघर्ष से बहुत भिन्न नहीं है। इस संघर्ष में उसे अनेक स्थापित सामाजिक संस्थाओं, वर्चस्वशील विचार-सरणियों से टकराना होता है क्योंकि पितृसत्तात्मक समाज की स्त्री-विरोधी परम्पराओं के आयाम अपने-आप में विशिष्ट होते हैं जो स्त्री को घर, पति, संतान की पूरी ज़िम्मेदारियाँ सौंपते हैं। यहाँ तक कि स्त्री के लिखे को पाठक और प्रकाशक भी उपेक्षित करते हैं। मसलन सरला देवी के *नारीरा दाबी* का प्रकाशन एक बार भी बमुश्किल हो पाता है और जगबंधु सिंह की *गृहलक्ष्मी* पाठकों द्वारा इतनी पसंद की जाती है कि उसके कई संस्करण प्रकाशित होते हैं। ऐसी ही स्थिति में पर्दे के भीतर घुटती स्त्री की यातना और स्वातंत्र्य-कामना का चित्रण *सुल्ताना का सपना में हुआ है जिसमें* (रुकैया सख़ावत हुसैन, 1905) स्त्री स्वप्न में ही अपनी स्वाधीनता का स्वाद चख़ पाती है।

नवाब फ़ैज़ुन्निसा द्वारा लिखी एक और पुस्तक *संगीत लहरी* का उल्लेख मिलता है, जिसे आख्यान या उपाख्यान कहा गया। इस अप्राप्य पुस्तक में फैज़ुन ने मिश्रभाषा का प्रयोग किया था जिसमें शैली के स्तर पर 1860 में शम्सुद्दीन के *उचित श्रवण* का अनुकरण था। गद्य और पद्य मिश्रित इस पुस्तक में स्त्रियों को उचित आचरण की शिक्षा दी गयी। यह देखना दिलचस्प हो सकता है कि जहाँ एक ओर फ़ैज़ुन्निसा स्त्रियों को आचरण की शिक्षा दे रही थी वहीं *रूपजलाल* में रूपबानो के माध्यम से स्त्री की यौनेच्छा की अभिव्यक्ति इन शब्दों में कर रही थी :

1. तुम कैसे प्यासे प्रेमी हो
जो नई कुमारिका का अमृतपान नहीं करते
वह जो दग्ध है अप्राप्य प्रेम की ज्वाला में
जो है तुम्हारी बिल्कुल अपनी
क्या बुरा है उसका मधुपान करना
2. तथा, पति पत्नी का क्रीड़ा
पति-पत्नी का क्रीड़ा-कौतुक से रहित प्रेम
प्रेम-रहित रात्रि में होती है दग्ध राजकुमारी

मुसलमान स्त्रियों के लिए आचरण-पुस्तकों की रचना कभी लेख और कभी पुस्तक के रूप में स्त्रियों ने भी की और पुरुषों ने भी। जिन बीवी तहरुन्निसा को पहली भारतीय मुसलमान गद्य-लेखिका के रूप में जाना जाता है, उनका निबंध 1865 में *बामाबोधिनी* पत्रिका में एक लम्बे पत्र के रूप में छपा था। तहरुन्निसा स्वयं बोड़ा गर्ल्स स्कूल, कलकत्ता की छात्रा थीं और पर्दे के भीतर स्त्री-शिक्षा की वकालत करती थीं। *बामाबोधिनी* पत्रिका के जून 1897 अंक में बीवी लतीफ़ुन्निसा की लम्बी कविता 'बंगीय मुस्लिम महिलादेर प्रति' छपी थी जिसमें स्त्री-जागृति का भाव व्यक्त किया गया था। इसी दौरान मुहम्मदी बेगम ने भी डिप्टी नज़ीर अहमद की तर्ज़ पर उर्दू उपन्यास-लेखन किया। मुहम्मदी

---

[67] फएजा एस. हसनत (2009), 'नवाब फ़ैज़ुन्निसाज़ रूपजलाल', *वुमॅन ऐंड जेण्डर : द मिडल ईस्ट ऐंड द इस्लामिक वर्ल्ड,* खण्ड 07, प्रकाशक कोनिक्लिज़िकी ब्रिल, एन.वी.

बेगम के लिखे आठ–दस उपन्यास मिलते हैं जो कमोबेश आचरण–पुस्तकें ही हैं जिनमें *शरीफ़ बेटी, सफ़िया बेगम, आजकल, चंदनहार* को देखा जा सकता है। इनमें से *शरीफ़ बेटी* पूरी तरह *मिरात–उल–उरूस* की तर्ज़ पर लिखी गयी। 1900 के आसपास मौलाना मुहम्मद अशरफ़ अली थानवी ने *बहिश्ती जेवर* की रचना की जिसमें आध्यात्मिकता की आड़ में मुसलमान औरतों को पति की आज्ञा में रहने और उपयुक्त आचरण–की शिक्षा दी गयी। *बहिश्ती ज़ेवर* तो इतनी लोकप्रिय हुई कि लड़कियों को विवाह के समय इस पुस्तक की एक प्रति दहेज़ में देने की परम्परा चल पड़ी। उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में अज़ीज़ुन्निसा और ख़ैरुन्निसा जैसी स्त्रियाँ भी लिख रही थीं जिनका लेखन राह दिखाने वाले लेखकों का अनुकरण मात्र था। इसके पीछे प्रकाशन की महत्त्वाकांक्षा और पारिवारिक, सामाजिक सेंसरशिप के दबावों को देखा जा सकता है। *इस्लाम प्रचारक* जैसी पत्रिका में छपने वाली पहली मुसलमान रचनाकार अज़ीज़ुन्निसा ने 1902 में *हम्द : ईश्वर प्रशस्ति* लिखी। हो सकता है कि वह ईश्वर प्रशस्ति के अलावा कुछ और लिखती तो *इस्लाम प्रचारक* में छपती ही नहीं। इसी तरह ख़ैरुन्निसा (1870–1912) ने 1904 में *बाबून* नामक पत्रिका में 'आमादेर शिक्षार अंतराय' और 'स्वदेश अनुराग' (1905) शीर्षक निबंध लिखे, जो उनके सुशिक्षित होने का पता देते हैं। उसी ख़ैरुन्निसा ने पितृसत्तात्मक अनुकूलन के कारण *सतीर पति भक्ति* जैसी आचरण–संहिता भी लिखी जो अच्छी पत्नी के कर्तव्यों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करती है। 68 पृष्ठों की पुस्तक में वह लिखती है— 'मैं एक साधारण मुसलमान महिला हूँ, जिसने इससे पहले कोई किताब नहीं लिखी। जब मैं स्थानीय गर्ल्स स्कूल की प्राध्यापिका थी, तब मैंने अख़बार के लिए कुछ टुकड़े लिखे थे।'[68] *सतीर पति भक्ति* इतनी लोकप्रिय हुई कि इसके चार संस्करण निकले थे। 1926 में अब्दुल हक़ीम विक्रमपुर ने लिखा था— 'स्वर्गीय ख़ैरुन्निसा ख़ातून साहिबा ने औरतों की एक किताब *सतीर पति भक्ति* लिखी थी। वे सिराजगंज के हुसैनपुर बालिका विद्यालय की प्रधानाध्यापिका थीं। उनकी पुस्तक की लोकप्रियता का अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसका चौथा संस्करण छप रहा है।'[69] इसके अतिरिक्त एस.के. ख़ातून की आचरण–पुस्तक *स्वामी सोहागिनी* को भी देखा जा सकता है, जिसका प्रकाशन नोआखाली से 1914 में हुआ।

नवजागरण कालीन उपन्यास सांस्कृतिक परिवर्तन के एजेंट के रूप में सामने आया था। इसी दौर में स्त्रियों और पुरुषों द्वारा स्त्रियों पर लिखने की शुरुआत हुई और जेण्डर पर विमर्श का प्रारम्भ भी। राजनीति में जिन मुद्दों पर बिल्कुल चर्चा नहीं होती थी, गद्य विधाओं ने उन मुद्दों, जैसे यौनिकता और सेक्स पर बात शुरू की। स्त्री–शिक्षा ने पहली बार स्त्री को अभिव्यक्ति का लिखित हथियार दिया। संवादों में लिखी आचरण–पुस्तकों में स्त्रियों की बोली–बानी को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने का दावा किया गया तो एक विशिष्ट लैंगिक भाषा सामने आयी। समाज, परिवार, परम्पराएँ, धर्म इन सबको देखने का स्त्री दृष्टिकोण अपने–आप विशिष्ट था, पुरुष दृष्टिकोण से अलग। स्त्रियों ने लिखकर लैंगिक विभेद और टकराव के अनुभवों को साझा किया, जो दीखने में सरल और सहज थे, लेकिन उनसे समाज के एक ऐसे वर्ग के बारे में पाठक को जानकारी मिली, जिससे वह अभी तक परिचित नहीं था साथ ही लेखन और प्रकाशन की राजनीति के छिपे–दबे पहलू भी सामने आये। स्त्री रचनाकारों पर स्त्री की शुचिता, पतिव्रता और सतीत्व की स्थापना संबंधी मुद्दों पर ही लिखने के लिए दबाव डाला जाना इसी रणनीति का हिस्सा था। स्त्रियों से कहा गया कि उन्हें यथार्थ चित्रण से बचकर समाज के उच्चतर मूल्यों के लिए लिखना चाहिए। इसलिए मध्यवर्गीय मुसलमान स्त्रियों ने आलोचकों–

---

[68] मुहम्मद मसरुद्दीन (1981), *बांग्ला साहित्ये मुस्लिम साधना,* तृतीय संस्करण, रतन प्रकाशन, ढाका : 197–198.

[69] मुहम्मद अब्दुल हक़ीम विक्रमपुरी, *बंग साहित्य मुसलमान महिला,* सौगात, भाद्र 1333, 4 : 3, 173.

साहित्यकारों के बने–बनाए चौखटों के विरुद्ध लिखने का साहस एक लम्बे समय तक नहीं किया और घरेलू परिवेश में रोमैंटिक प्रेम, त्याग, बलिदान तक ही सीमित रहीं और स्त्री की वही छवि प्रस्तुत की जैसा उन्हें राह दिखाने वाले पुरुषों ने किया था।

संदर्भ :

अंग्रेज़ी आचरण-पुस्तकों की सूची

जॉर्ज़ सविले, मार्केव्ज़ ऑफ़ हैलिफैक्स (1688), *द लेडीज़ न्यू इयर्स गिफ़्ट : ऑर एडवाइज़ टू अ डॉटर.*

जॉर्ज एडमॉन हावर्ड, *ए फ़ोरिस्मस ऐंड मैक्सिमज़ ऑन वेरियस सब्जेक्ट्स फ़ॉर द गुड कन्डक्ट ऑफ़ वाइफ़.*

जॉन ग्रेगोरी (1774), ए फ़ादर्स लीगेसी टू हिज़ डॉटर्स.

जेम्स फॉरडाइस (1767), *सरमंस टू यंग वुमॅन,* चौथा संस्करण, खण्ड 2, ए. मिलर ऐंड टी. कॉडेल, लंदन.

जोसेफ़ डोरमैन (1736), *'द फीमेल' राके : ऑर मॉडर्न फ़ाइन लेडी.*

थॉमस गिसबॉर्न (1799), *एन इन्क्वायरी इन टू द ड्यूटीज़ ऑफ़ द फ़ीमेल सेक्स,* चौथा संस्करण, टी. कॉडेल जूनियर और डब्लू डेविस.

द पोलाइट लेडी (1769), *ऑर अ कोर्स ऑफ़ फ़ीमेल ऐज्यूकेशन, इन द सीरिज़ ऑफ़ लैटर्स, फ़्रॉम ए मदर टू हर डॉटर,* दूसरा संस्करण, लंदन, न्यूबेरी ऐंड कॉरमेन.

मैरी एस्टेल (1970), *अ सीरियस प्रपोज़ल टू द लेडीज़ फ़ॉर द एडवांसमेंट ऑफ़ देयर इंटरेस्ट,* चौथा संस्करण (1701), सोर्स बुक्स प्रेस, न्यूयार्क.

मिस हैटफ़ील्ड (1803), *लेटर्स ऑन द इर्पोटेंस ऑफ़ द फ़ीमेल सेक्स : विद ऑब्ज़र्वेशन ऑफ़ देयर मैनर्स,* एडलार्ड

लाइटिटिया मटिल्डा हॉकिंस (1793), *लैटर्स ऑन द फ़ीमेल माइंड–इट्स पॉवर्स ऐंड परस्यूट्स–वॉल्यूम–*2 लंदन, हूख़म ऐंड कारपेंटर.

सारा पेनिंगटन (1761), *एन अनफॉरच्यूनेट मदर्स एडवाइज़ टू हर एब्सेंट डॉटर्स,* एस सैंडलर, लंदन.

हन्ना मोरे (1799), *स्ट्रिक्टरर्स ऑन द मॉडर्न सिस्टम ऑफ़ फ़ीमेल ऐजुकेशन,* वॉल्यूम–2, दूसरा संस्करण, टी. कॉडेल जूनियर और डब्लू डेविस, लंदन.

चीनी आचरण-पुस्तकों की सूची

तांग डाइनेस्टी— *इन्क्लूडिंग ए वूमन्स कैनन ऑफ़ फिलिअल पिटी.*

बॉन झाओ, *द वूमंस एडमोनीशंस.*

नी लीऊ, *द स्केच ऑफ़ ए मॉडेल फ़ॉर वुमॅन.*

लैन डाइन्यूआन, *वूमंस स्कॉलरशिप,* क्विंग डाइनेस्टी, 6 जुआन.

साम्राजी क्ज़ू (1403–1424) *द डोमेस्टिक लैसंस.*

साँग रूओक्ज़िन, *द वूमन्स एनालेक्ट्स.*

टिप्पणी : चीनी में आचरण–सिखाने की महत्त्वपूर्ण पुस्तकें चार ही मानी गयीं, जिन्हें नव्य कंफ्यूशियन विचारकों द्वारा शास्त्रीय टेक्स्ट के रूप में सराहा गया : ये चार पुस्तकें थीं— *द एनालेक्ट्स, दमेनशियस, द ग्रेट लर्निंग और द डॉक्टराइन ऑफ़ द मीन* (झोंग–योंग) जिसे कंफ्यूशियस के एकमात्र पौत्र कोंग जी (ज़िसी) को समर्पित किया गया।